3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

(1) 'अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतरवाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता।'

योग्यता-विस्तार

- उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बन्धन मनुष्य का स्वभाव है। - कक्षा में चर्चा कीजिए।

●

3 मातृभूमि का मान

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

(जन्म : सन् 1908 ई. ; निधन : सन् 1974 ई.)

सफल नाटक एवं एकांकीकार प्रेमी जी का जन्म ग्वालियर के गुना में हुआ था किंतु उनका साहित्य – साधना का क्षेत्र लाहौर ही रहा। विभाजन के बाद वे जालंधर आ गए और आकाशवाणी से जुड़ गए। राष्ट्रभक्ति के संस्कार उन्हें बाल्यकाल में अपने परिवार से ही मिले। यही कारण है कि प्रेमी जी के नाटकों – एकांकियों में राष्ट्रीय आंदोलन, राष्ट्रभक्ति, धार्मिक एकता तथा अछूतोद्धार जैसे पहलुओं का उद्‌घाटन हुआ है। अपने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास के आलोक में युगीन समस्याओं को उठाया है।

प्रेमी जी की सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'स्वर्ण विहान' गीति नाट्य है। इसके बाद उन्होंने 'रक्षाबंधन', 'शिवासाधना', 'प्रतिशोध', 'आहुति', 'विषपान' आदि अनेक ऐतिहासिक नाटक लिखे। 'मंदिर और बादलों के पार' उनके प्रमुख एकांकी संग्रह हैं। उनकी नाट्य रचनाएँ मंच की दृष्टि से सफल रही हैं। कवि होने के कारण नाटकों में गीति तत्व भी देखने को मिलता है। 'अनंत के पथ पर', 'आँखों में', 'अग्निगान', 'रूप दर्शन' एवं 'वंदना के बोल' उनके काव्य संग्रह हैं। प्रेमीजी ने पत्रकार, प्रकाश के रूप में काम करने के साथ-साथ मुंबई के फिल्म जगत में भी सुंदर कार्य किया था।

'मातृभूमि का मान' एक ऐतिहासिक एकांकी है। एक ओर राजस्थान के राजपूतों के साहस, शौर्य एवं बलिदान भावना का वर्णन है तो दूसरी ओर उनके उस कमजोर पहलू पर प्रकाश डाला गया है जो अपने-अपने अहंकार के वश उन्हें आपस में लड़ने – मरने को मजबूर कर देता है। चित्तौड़ का महाराणा लाखा सिसोदिया वंश के अहंकार की तुष्टि के लिए बूँदी का नकली किला बनाकर उस पर विजय पाना चाहता है। लेकिन उन्हीं की फौज में सैनिक हाड़ा राजपूत वीरसिंह नकली किले को भी अपनी मातृभूमि का प्रतीक मान कर उसकी रक्षा के लिए प्राण दे देता है। इसे देखकर चित्तौड़ और बूंदी के दोनों महाराजाओं की आँखें खुल जाती हैं और वे स्वीकार करते हैं कि वीरसिंह के बलिदान ने हमें जन्मभूमि का मान करना सिखाया है। दोनों राजपूतों में न कोई राजा होता है न महाराजा, सब मातृभूमि की मान रक्षा के लिए प्राण देने वाले सैनिक हैं।

पात्र

राव हेमू : बूंदी के राव

अभयसिंह : मेवाड़ के सेनापति

महाराणा लाखा : चित्तौड़ के महाराणा

चारणी : एक गायिका

वीरसिंह : बूंदी का राजपूत

दो वीर साथी

पहला दृश्य

(स्थान – बूंदीगढ़। बूंदी के राव हेमू अपने कमरे में मेवाड़ के सेनापति अभयसिंह से बातें कर रहे हैं।)

अभयसिंह : महाराव, सिसौदिया वंश हाड़ाओं को आदर और स्नेह की दृष्टि से देखता है।

राव हेमू : तो फिर आप बूंदी को मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करने की आज्ञा लेकर क्यों आए हैं ?

अभयसिंह : महाराव, हम राजपूतों की छिन्न-भिन्न असंगठित शक्ति विदेशियों का किस प्रकार सामना कर सकती है ? इस बात की अत्यंत आवश्यकता है कि हम अपनी शक्ति एक केन्द्र के अधीन रखें।

राव हेमू : और वह केन्द्र है चित्तौड़।

अभयसिंह : इसमें भी कोई संदेह है, महाराव ? चित्तौड़ का गौरव फिर लौटा है। जो राजवंश पहले मेवाड़ के अधीन थे,

महाराणा लाखा चाहते हैं, आज भी उसी तरह रहें। बूंदी राज्य भी सदा से मेवाड़ के आश्रित...

राव हेमू : बूंदी राज्य सदा से मेवाड़ के आश्रित !... यह तुम क्या कहते हो। अभयसिंहजी, हाड़ा वंश किसी की गुलामी स्वीकार नहीं करेगा।

अभयसिंह : महाराव, आज राजपूतों को एक सूत्र में गूंथे जाने की बड़ी आवश्यकता है और जो व्यक्ति यह माला तैयार करने की ताकत रखता है, वह है महाराणा लाखा।

राव हेमू : ताकत की बात छोड़ो, अभयसिंह। प्रत्येक राजपूत को अपनी ताकत पर नाज है।

अभयसिंह : किंतु अनुशासन का अभाव हमारे देश के टुकड़े किए हुए है।

राव हेमू : प्रेम का अनुशासन मानने को हाड़ा वंश सदा तैयार है, शक्ति का नहीं। मेवाड़ के महाराणा को यदि अपने ही जाति भाइयों पर तलवार आजमाने की इच्छा हुई है तो उससे उन्हें कोई नहीं रोक सकता। बूंदी स्वतंत्र राज्य है और स्वतंत्र रहकर वह महाराणाओं का आदर करता रह सकता है। अधीन होकर किसी की सेवा करना वह पसंद नहीं करता।

अभयसिंह : तो मैं जाऊँ ?

राव हेमू : आपकी इच्छा।

(दोनों का दो तरफ प्रस्थान। पट परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

(स्थान – चितौड़ का राजमहल। महाराणा लाखा बहुत चिंतित और व्यथित अवस्था में कमरे में टहल रहे हैं।)

लाखा : मेवाड़ के गौरवपूर्ण इतिहास में मैंने कलंक का टीका लगाया है। इस बार मुट्ठीभर हाड़ाओं ने हम लोगों को जिस प्रकार पराजित और विफल किया, उससे मेवाड़ के आत्मगौरव को कितनी ठेस पहुँची है, मेरा हृदय जानता है।

अभयसिंह : महाराणा जी। दरबार के सभासद आपके दर्शन पाने को उत्सुक हैं।

महाराणा : सेनापति अभयसिंहजी, आज मैं दरबार में नहीं जाऊँगा। आप जानते हैं कि जब से हमें नोमरा के मैदान में बूंदी के राव हेमू से पराजित होकर भागना पड़ा, मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है। बाप्पा रावल और वीरवर हमीर का रक्त जिसकी धमनियों में बह रहा हो वह प्राणों के भय से भाग जाए, यह कितने कलंक की बात है।

अभयसिंह : किंतु जरा-सी बात के लिए आप इतना शोक क्यों करते हैं, महाराणा ? हाड़ाओं ने रात के समय अचानक हमारे शिविर पर हमला कर दिया। आकस्मिक धावे से घबराकर हमारे सैनिक भाग खड़े हुए। आप तो तब भी प्राण पर खेलकर राव हेमू से लोहा लेना चाहते थे। किंतु हमी लोग वहाँ से आपको खींच लाए। इसमें आपका क्या अपराध है और इसमें मेवाड़ के गौरव में कमी आने का कौन-सा कारण है ?

महाराणा : जिनकी खाल मोटी है, उनके लिए किसी भी बात में कोई भी अपयश, कलंक या अपमान का कारण नहीं होता। किंतु जो आन को प्राणों से बढ़कर समझते आए हैं, वे पराजय का मुख देखकर भी जीवित रहें, यह कैसी उपहासजनक बात है। सुनो अभयसिंहजी, मैं अपने मस्तक से इस कलंक के टीके को धो डालना चाहता हूँ।

अभयसिंह : मेवाड़ के सैनिक आपकी आज्ञा पर अपने प्राणों की बलि देने को प्रस्तुत हैं।

महाराणा : उनके पौरुष की परीक्षा का दिन आ पहुँचा है। महारावल बाप्पा का वंशज मैं लाखा प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक बूंदी के दुर्ग में ससैन्य प्रवेश नहीं करूँगा, अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।

अभयसिंह : महाराणा ! छोटे से बूंदी दुर्ग को विजय करने के लिए इतनी बड़ी प्रतिज्ञा करने की क्या आवश्यकता है ? बूंदी को उसकी धृष्टता के लिए तो दंड दिया ही जाएगा, लेकिन हाड़ा लोग कितने वीर हैं। युद्ध करने में वे यम से भी नहीं डरते। इसमें संदेह नहीं कि अंतिम विजय हमारी ही होगी, किंतु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता

कि इसमें कितने दिन लग जाएँगे। इसलिए ऐसी भीषण प्रतिज्ञा आप न करें।

महाराणा : आप यह क्या कहते हैं, सेनापति ? क्या कभी आपने सुना है कि सूर्यवंश में पैदा होने वाले पुरुष ने अपनी प्रतिज्ञा को वापस लिया हो ? 'प्राण जाहि पर वचन न जाई' यह हमारे जीवन का मूल मंत्र है। जो तीर तरकस से निकलकर कमान पर चढ़कर छूट गया, उसे बीच से नहीं लौटाया जा सकता। मेरी प्रतिज्ञा कठिनाई से पूरी होगी, यह मैं जानता हूँ और इस बात की हाल के युद्ध में पुष्टि भी हो चुकी है कि हाड़ा जाति वीरता में हम लोगों से किसी प्रकार हीन नहीं है, फिर भी महाराणा लाखा की प्रतिज्ञा वास्तव में प्रतिज्ञा है। वह पूर्ण होनी चाहिए।

नेपथ्य में गान

ये सागर से रत्न निकाले। युग-युग से हैं गए संभाले।
इनसे दुनिया में उजियाला। तोड़ मोतियों की मत माला।
ये छाती में छेद कराकर, एक हुए हैं हृदय मिलाकर।
इनमें व्यर्थ भेद क्यों डाला ? तोड़ मोतियों की मत माला।

(गाते-गाते चारणी का प्रवेश।)

महाराणा : तुम कुछ गा रही थीं, चारणी । तुम संपूर्ण राजस्थान को एकता की श्रृंखला में बाँधकर देश की स्वाधीनता के लिए कुछ करने का आदेश दे रही थीं ? किंतु मैं तो उस श्रृंखला को तोड़ने जा रहा हूँ। दो जातियों में जानी दुश्मन पैदा करने जा रहा हूँ।

चारणी : यह आप क्या कहते हैं, महाराणा ?

अभयसिंह : चारणी, महाराणा ने प्रतिज्ञा की है कि जब तक वे बूंदी के गढ़ को जीत न लेंगे, अन्न-जल ग्रहण न करेंगे।

चारणी : दुर्भाग्य ! (कुछ सोचकर) महाराणा, मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। देश का कोई भी शुभचिंतक इस विद्वेष की आग को फैलने देना पसंद नहीं कर सकता।

अभयसिंह : किंतु महाराणा की प्रतिज्ञा तो पूरी होनी ही चाहिए।

चारणी : उसका एक ही उपाय है। वह यह कि यहाँ पर बूंदी का एक नकली दुर्ग बनाया जाए। महाराणा उसका विध्वंस करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लें। महाराणा, क्या आपको मेरा प्रस्ताव स्वीकार है ?

महाराणा : अच्छा, अभी तो मैं नकली दुर्ग बनाकर उसका विध्वंस करके अपने व्रत का पालन करूँगा। किंतु हाड़ाओं को उनकी उद्दंडता का दंड दिए बिना मेरे मन को संतोष न होगा। सेनापति, नकली दुर्ग बनवाने का प्रबंध करें।

(सबका प्रस्थान। पट परिवर्तन।)

तीसरा दृश्य

(चितौड़ के निकट एक जंगली प्रदेश। नकली दुर्ग के मुख्य दरवाजे से महाराणा लाखा और सेनापति अभयसिंह का प्रवेश)

अभयसिंह : आपने दुर्ग का निरीक्षण कर लिया ? ठीक बन गया है न ?

महाराणा : क्यों न बनता ? नि:संदेह यह ठीक बूंदी दुर्ग की हू-ब-हू नकल है। अब इस पर चढ़ाई करने का खेल खेला जाए। इस मिट्टी के दुर्ग को मिट्टी में मिलाने से मेरी आत्मा को संतोष तो नहीं होगा लेकिन अपमान की वेदना में जो विवेकहीन प्रतिज्ञा मैंने कर डाली थी, उससे तो छुटकारा मिल ही जाएगा। उसके बाद फिर ठंडे दिमाग से सोचना होगा कि बूंदी को मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करने के लिए किस तरह बाध्य किया जाए।

अभयसिंह : निश्चय ही महाराज ! शीघ्र ही बूंदी के पठारों पर चित्तौड़ का सिंहनाद होगा। अच्छा, अब हम लोग आज के रण की तैयारी करें।

महाराणा : किंतु यह रण होगा किससे ? इस दुर्ग में कोई तो हमारा पथ-प्रतिरोध करने वाला होना चाहिए।

अभयसिंह : हाँ, खेल में भी तो कुछ वास्तविकता आनी चाहिए। मैंने सोचा है, दुर्ग के भीतर अपने ही कुछ सैनिक रख दिए जाएँगे जो बंदूकों से हम लोगों पर छूंछे वार करेंगे। कुछ घंटे ऐसा ही खेल होगा। फिर यह मिट्टी का दुर्ग मिट्टी में मिला दिया जाएगा। अच्छा, अब हम चलें।

(दोनों का प्रस्थान। दूसरी ओर से वीरसिंह का कुछ साथियों के साथ प्रवेश।)

वीरसिंह : मेरे बहादुर साथियों ! तुम देख रहे हो हमारे सामने यह कौन-सी इमारत बनाई गई है ?

पहला साथी : हाँ सरदार, यह हमारी जन्मभूमि बूंदी का दुर्ग है।

वीरसिंह : और तुम जानते हो कि महाराणा आज इस गढ़ को जीतकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं। किंतु क्या हम लोग अपनी जन्मभूमि का अपमान होने देंगे ? यह हमारे वंश के मान का मंदिर है। क्या हम इसे मिट्टी में मिलने देंगे ?

दूसरा साथी : किंतु यह तो नकली बूंदी है।

वीरसिंह : धिक्कार है तुम्हें। नकली बूंदी भी हमें प्राणों से अधिक प्रिय है। जिस जगह एक भी हाड़ा है, वहाँ बूंदी का अपमान आसानी से नहीं किया जा सकता। आज महाराणा आश्चर्य के साथ देखेंगे कि यह खेल केवल खेल ही नहीं रहेगा। यहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि सिसौदियों और हाड़ाओं के खून से लाल हो जायेगी।

तीसरा साथी : लेकिन सरदार, हम लोग महाराणा के नौकर हैं। क्या महाराणा के विरुद्ध तलवार उठाना हमारे लिए उचित है ? हमारा शरीर महाराणा के नमक से बना है। हमें उनकी इच्छा में व्याघात नहीं पहुँचाना चाहिए।

वीरसिंह : और जिस जन्मभूमि की धूल में खेलकर हम बड़े हुए हैं, उसका अपमान भी कैसे सहन किया जा सकता है ?

पहला साथी : निश्चय ही जहाँ बूंदी हैं, वहाँ पर हाड़ा है और जहाँ पर हाड़ा हैं, वहाँ पर बूंदी है। कोई नकली बूंदी का भी अपमान नहीं कर सकता। जन्मभूमि हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

वीरसिंह : मेरे वीरों ! तुम अग्नि कुल के अंगारे हो। अपने वंश की आभा को क्षीण न होने देना। प्रतिज्ञा करो कि प्राणों के रहते हम इस नकली दुर्ग पर मेवाड़ की राजपताका को स्थापित न होने देंगे।

सब लोग : हम प्रतिज्ञा करते हैं कि प्राणों के रहते इस दुर्ग पर मेवाड़ का ध्वज न फहराने देंगे।

वीरसिंह : मुझे आप लोगों पर अभिमान है और बूंदी आप जैसे पुत्रों को पाकर फूली नहीं समाती। जिस बूंदी में ऐसे मान के धनी पैदा होते हैं, उस पर संसार आशीर्वाद के साथ फूल बरसा रहा है। चलो, हम दुर्ग रक्षा की तैयारी करें।

(सबका प्रस्थान। पट परिवर्तन।)

चौथा दृश्य

(स्थान - बूंदी के नकली दुर्ग का बंद द्वार। महाराणा लाखा और अभयसिंह का प्रवेश।)

महाराणा : सूर्य डूबने को आया। यह कैसी लज्जा की बात है कि हमारी सेना बूंदी के नकली दुर्ग पर अपना झंडा स्थापित करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकी ? वीरसिंह और उनके मुट्ठी भर साथी अभी तक वीरतापूर्वक लड़ रहे हैं।

अभयसिंह : हाँ महाराणा, हम तो समझते थे कि घड़ी दो-घड़ी में यह खेल खत्म हो जाएगा, लेकिन हमें छूंछे वारों का मुकाबला करने के बजाय हाड़ाओं के अचूक निशानों का सामना करना पड़ा।

महाराणा : यह भी अच्छा हुआ कि हमारे इस खेल में भी कुछ वास्तविकता आ गई।

अभयसिंह : मैंने जब दुर्ग से अग्निवर्षा होती देखी तो मुझे कुछ आश्चर्य हुआ था। कुछ क्षणों के लिए सफेद झंडा फहराकर मैंने युद्ध को रोक दिया था। उसके बाद मैं स्वयं दुर्ग में गया और वीरसिंह की उसके साहस के लिए प्रशंसा की, साथ ही उससे अनुरोध किया कि तुम व्यर्थ प्रयास में अपने प्राण न खोओ। तुम महाराणा के नौकर हो। तुम्हें

उनके विरुद्ध हथियार न उठाने चाहिए, किंतु उसने उत्तर दिया कि महाराणा ने हाड़ाओं को चुनौती दी है। हम इस चुनौती का उत्तर देने को मजबूर हैं। महाराणा यदि हमारे प्राण लेना चाहते हैं तो खुशी से ले लें। लेकिन हम इतने कायर और निष्प्राण नहीं हैं कि अपनी आँखों से बूंदी का अपमान होते हुए देखें। मेवाड़ में जब तक एक भी हाड़ा है, नकली बूंदी पर भी बूंदी की ही पताका फहराएगी।

महाराणा : निश्चय ही इन वीरों का जन्मभूमि के प्रति आदरभाव सराहनीय है। यह मैं जानता हूँ कि इन लोगों के प्राणों की रक्षा का कोई उपाय नहीं। इतने बहुमूल्य प्राण लेकर भी मुझे प्रतिज्ञा पूरी करनी पड़ेगी। वह देखो, दुर्ग की उस दरार में खड़ा हुआ वीरसिंह कितनी फुर्ती से बाणवर्षा कर रहा है। अकेला ही हमारे सैकड़ों सैनिकों की टोली को आगे बढ़ने से रोके हुए है। धन्य हैं ऐसे वीर, धन्य है वह माँ जिसने ऐसे वीर पुत्र को जन्म दिया। धन्य है वह भूमि जहा पर ऐसे सिंह पैदा होते हैं।

(जोर का धमाका और प्रकाश होता है।)

महाराणा : अरे देखो अभयसिंह, गोले के वार से वीरसिंह के प्राण पखेरू उड़ गए। बूंदी के मतवाले सिपाही सदा के लिए सो गए। अब हम विजयश्री प्राप्त कर सके। जाओ, दुर्ग पर मेवाड़ की पताका फहराओ और वीरसिंह के शव को आदर के साथ यहाँ ले आओ।

(अभयसिंह का प्रस्थान)

महाराणा : आज इस विजय में मेरी सबसे बड़ी पराजय हुई है, व्यर्थ के दंभ ने आज कितने ही निर्दोष प्राणों की बलि ले ली।

(चारणी का प्रवेश)

चारणी : महाराणा, अब तो आपकी आत्मा को शांति मिल गई होगी। अब तो आपने अपने सिर के कलंक का टीका धो लिया। यह देखो बूंदी के दुर्ग पर मेवाड़ के सेनापति विजयपताका फहरा रहे हैं। वह सुनिए, मेवाड़ की सेना में विजय दुंदुभि बज रही है।

महाराणा : चारणी, क्यों पश्चाताप से विकल प्राणों को तुम और दुःखी करती हो ? न जाने किस बुरी सायत में मैंने बूंदी को अपने अधीन करने का निश्चय किया था। वीरसिंह की वीरता ने मेरे हृदय के द्वार खोल दिए हैं, मेरी आँखों पर से पर्दा हटा दिया है। मैं देखता हूँ ऐसी वीर जाति को अधीन करने की अभिलाषा करना पागलपन है।

चारणी : तो क्या महाराणा, अब भी मेवाड़ और बूंदी के हृदय मिलाने का कोई रास्ता नहीं निकल सकता ?

(वीरसिंह के शव के साथ अभयसिंह का प्रवेश)

महाराणा : (शव के पास बैठते हुए) चारणी, इस शहीद के चरणों के पास बैठकर मैं अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता हूँ, किन्तु क्या बूंदी के राव तथा हाड़ावंश का प्रत्येक राजपूत आज की इस दुर्घटना को भूल सकेगा ?

(राव हेमू का प्रवेश)

राव हेमू : क्यों नहीं, महाराणा ! हम युग-युग से एक हैं और रहेंगे। आपको यह जानने की आवश्यकता थी कि राजपूतों में न कोई राजा है, न कोई महाराजा। सब देश, जाति और वंश की मान रक्षा के लिए प्राण देने वाले सैनिक हैं। हमारी तलवार अपने ही स्वजनों पर न उठनी चाहिए। बूंदी के हाड़ा सुख और दुःख में सदा से चितौड़ के सिसौदियों के साथ रहे हैं और रहेंगे। हम सब राजपूत अग्नि के पुत्र हैं, हम सब के हृदय में एक ही ज्वाला जल रही है कि हम कैसे एक-दूसरे से पृथक हो सकते हैं। वीरसिंह के बलिदान ने हमें जन्मभूमि का मान करना सिखाया है।

महाराणा : निश्चय ही महाराज ! हम संपूर्ण राजपूत जाति की ओर से इस अमर आत्मा के आगे अपना मस्तक झुकाएँ।

(सब बैठकर वीरसिंह के शव के आगे झुकते हैं।)

पटाक्षेप

शब्दार्थ-टिप्पणी

नाज़ गर्व **तरकस** तीर जिसमें रखते हैं वह

मुहावरे

खाल मोटी होना संवेदनहीन होना **तीर तरकस से निकलना** समय निकल जाना **फूला न समाना** प्रसन्न होना **मिट्टी में मिलाना** बर्बाद करना **आँखों से परदा हटना** सच सामने आना **खेल खत्म होना** समाप्त होना

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) चित्तौड़ के महाराणा लाखा में कौन-सी शक्ति है ?

(2) प्रत्येक राजपूत को किस पर नाज है ?

(3) हमारे देश के टुकड़े-टुकड़े क्यों हुए थे ?

(4) महाराणा लाखा को अपनी आत्मा क्यों धिक्कार रही थी ?

(5) महाराणा किस कलंक को धोना चाहते हैं ? क्यों ?

(6) महाराणा ने क्या प्रतिज्ञा की ?

(7) चारणी किसकी शुभचिंतक है ?

2. उत्तर लिखिए :

(1) महाराणा लाखा क्यों चिंतित और व्यथित हैं ?

(2) सूर्यवंशियों के वचन में क्या विशेषता है ?

(3) महाराणा को प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए चारणी ने क्या उपाय बताया ?

(4) खेल में वास्तविकता होनी चाहिए - ऐसा अभयसिंह ने क्यों कहा ?

(5) वीरसिंह ने अपने साथियों से क्या प्रतिज्ञा करवाई ? क्यों ?

(6) वीरसिंह ने कैसी वीरता दिखाई ?

(7) महाराणा लाखा का चरित्र - चित्रण कीजिए।

3. सन्धि-विच्छेद कीजिए :

(1) निश्चिंत, व्यर्थ, संतोष, आशीर्वाद

योग्यता-विस्तार

- देशप्रेम से संबंधित कविताओं का संकलन कीजिए।
- जगदीशचन्द्र माथुर की एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' ढूँढ़कर पढ़िए।

●

4 मकदूम बख्श

सेठ गोविन्ददास

(जन्म : सन् 1896 ई. ; निधन : सन् 1974 ई.)

नाट्य-लेखक के रूप में प्रसिद्ध सेठ गोविंददास का जन्म जबलपुर के एक संपन्न, वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी परिवार में हुआ था। उन्होंने घर पर ही अंग्रेजी, संस्कृत एवं हिन्दी की शिक्षा प्राप्त की थी। गाँधीजी के प्रभाव से उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में हिस्सा लिया जेल गये और काफी साहित्य जेल में लिखा। देश आजाद होने के बाद संसद सदस्य भी बने। राजभाषा के रूप में हिन्दी का पुरजोर समर्थन उन्होंने किया।

उन्होंने पौराणिक आख्यानों पर आधारित अनेक नाटक लिखे। कुलीनता, विश्वप्रेम, प्रकाश, सिद्धांत स्वातंत्र्य, भूदान, नवरस, कर्ण, कर्तव्य आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। उनके एकांकी संग्रह हैं - सप्तरश्मि, एकादशी, चतुष्पथ तथा पंचमहाभूत। 'इंदुमती' नामक एक वृहद् उपन्यास भी उन्होंने लिखा है। सेठ गोविंददास को पद्मभूषण सम्मान भी प्राप्त हुआ।

'मकदूम बख्श' नामक रेखाचित्र में एक साधारण व्यक्ति के गुण-दोषों का बड़ी ईमानदारी से चित्रण किया गया है। उसके बाह्य एवं भीतरी व्यक्तित्व का चित्रात्मक शैली में यथार्थ वर्णन हुआ है। एक चुस्त वैष्णव परिवार के विशाल अस्तबल की संपूर्ण जिम्मेदारी सँभालने वाला यह मुसलमान शख्स उस परिवार का अभिन्न अंग बनकर रह रहा है, यह अपने आप में अनुकरणीय है। बग्घी-सवारी और जीन-सवारी में उसकी बराबरी करने वाला दूर-दूर तक कोई नहीं था। उसमें एक ही दुर्गुण था और वह था शराब पीना। शराब पीकर जब वह बेहोश हो जाता तो सुल्तान दूल्हे नामक चाबुक की मार पड़ने से ही उसे होश आता। इस बात का वह कभी बुरा भी न मानता था। लेखक ने इस वैष्णव परिवार के साथ-साथ सारे जबलपुर शहर के धार्मिक-सांप्रदायिक सौहार्द का भी उल्लेख किया है। रेखाचित्र की प्राय: सभी विशेषताएँ इस रचना में मिल जाती हैं।

कोई साठ वर्ष पहले की बात है, मेरी उम्र पाँच-छ: वर्ष की रही होगी। उसके कुछ वर्ष पूर्व मेरे पितामह गोकुलदासजी को अंग्रेज सरकार ने राजा की उपाधि दी थी, जो उस समय ब्रिटिश गवर्नमेन्ट द्वारा दी जाने वाली उपाधियों में सबसे बड़ी उपाधि मानी जाती थी। वे उस समय के मध्य प्रदेश के सबसे बड़े जमींदार थे और सामंतशाही के उस काल में जो शान-शौकत थी, वह इस राजा के खिताब से हमारे घर में बहुत बढ़ गयी थी। शान-शौकत के प्रदर्शन के कुछ प्रमुख मार्ग निश्चित हैं, उनमें प्राचीनकाल से लेकर अब तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है — आलीशान निवास-स्थान और सवारी इन प्रदर्शनों में प्रमुख हैं। हमारा मकान अब एक महल बन गया था। जिस काल की मैं चर्चा कर रहा हूँ, उस समय सवारी के लिए घोड़ों का बड़ा महत्त्व था। मोटरकारों के इस जमाने में भी शान-शौकत के कामों में तो अभी भी घोड़ों का ही उपयोग होता है। हमारे देश के राजकीय कामों के लिए राष्ट्रपति की सवारी घोड़ों की छकनी पर ही निकलती है, जिसके आगे-पीछे घुड़सवार रहते हैं। हमारे देश में ही नहीं, इंग्लैण्ड आदि देशों का भी यही हाल है। हमारे अस्तबल में उस समय कोई तीन सौ बग्घी और जीन-सवारी के घोड़े रहते थे और अस्तबल जिनके जिम्मे था, वे थे मकदूम बख्श।

यह आदमी एकदम आबनूस के रंग के सदृश काले रंग का था। उस रंग में इसकी बड़ी-बड़ी लाल आँखें थीं। कद छ: फुट से अधिक ही होगा और जितनी ऊँचाई थी, उतनी ही मोटाई भी। काले रंग की दाढ़ी थी, जो छाती पर न फैलकर बड़े ढंग से सँवारी जाकर राजपूती दाढ़ी के सदृश कानों में लिपटी रहती थी। मकदूम बख्श बग्घी चलाने और जीन-सवारी दोनों के विशेषज्ञ थे। बग्घी के काम के घोड़े उस वक्त आस्ट्रेलियन बेलर नस्ल के सबसे अच्छे माने जाते थे और जीन-सवारी के काठियावाड़ तथा मारवाड़ नस्ल के। जिस नस्ल के घोड़े घुड़दौड़ में या पोलो में काम आते हैं, वे हमारे यहाँ नहीं थे। हमारे यहाँ की शान-शौकत के लिए बग्घी और जीन-सवारी के घोड़े ही उपयोगी थे। मकदूम बख्श छ: घोड़ों की गाड़ी के कोच-बक्स पर बैठकर बड़ी शान से चलाते थे। कोच-बक्स पर वे जरा तिरछे होकर बैठते थे और जो वर्दी वे पहनते थे, उसमें सिर पर लुंगी बाँधी जाती थी। यह वर्दी और लुंगी जरी की रहती थी। इस छकड़ी के सिवा चद्दर नाम की एक गाड़ी में चार-चार घोड़ों की

चार कतारों में सोलह घोड़े जोते जाते थे। लेकिन यह पोस्टेलियन होती थी। याने एक-एक जोड़ी घोड़ों पर एक-एक कोचवान रहता था अर्थात् सोलह घोड़े को यह आठ कोचवान चलाते थे परन्तु ये आठों कोचवान मकदूम बख्श की मातहती में रहते थे। जीन-सवारी व घोड़ों की फेरी भी मकदूम बख्श करते थे। उनमें से कई घोड़े नाचते और कई लंगूरी चाल से चलते थे। मकदूम बख्श इन जीन सवारी के घोड़ों पर स्वयं बैठ और किसी को नचाते तथा किसी को लंगूरी चाल से चलाते थे। अपने इस हुनर में मकदूम बख्श दूर-दूर तक विख्यात थे। अनेक बार वे आसपास की रियासत में भी बुलाये जाते थे। इनमें दो रियासतें प्रमुख थीं—एक रीवाँ और दूसरी दौर। वहाँ से वे बड़ी-बड़ी सौगातें लेकर लौटते थे। परन्तु जब वे लौटते तो वे सारी सौगातें पहले पिताजी के सामने रखी जातीं और तब वे इन्हें लेते। दृष्टि से मकदूम बख्श बड़े भरोसे वाले और ईमानदार आदमी माने जाते थे। हमारा कुटुम्ब वल्लभ सम्प्रदाय का अनुयायी है। हमारे कुटुम्ब का एक मन्दिर भी था। मेरे पितामह, पिताजी और हम सभी वैष्णव हैं। लेकिन उस काल में अलग-अलग धर्म मानने वालों का भी परस्पर जो सम्बन्ध था, वह अनुकरणीय था। मकदूम बख्श मुसलमान रहते हुए भी हमारे घर के ऊँचे से ऊँचे कर्मचारियों में से एक थे।

परन्तु इनमें एक बहुत बड़ा दोष था। कई बार ये शराब के नशे में बेहोश तक हो जाते थे। हमारे घर की शान-शौकत बढ़ाने में मेरे पिताजी का प्रधान हाथ था। उनका खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन सभी ऊँचे से ऊँचा था। घोड़ों का यह शौक पिताजी को ही था और घोड़ों का क्या, ऐसा शौक ही कौन-सा था जो उनको न हो। वे बड़े प्रखर स्वभाव के थे। उनके पास एक बड़ा-सा चाबुक रहता था जिसे वे सुलतान दूल्हा कहते थे। उस चाबुक का यह नाम सारे जबलपुर में विख्यात हो गया था। यह सुल्तान दूल्हा जानवरों पर न चल, इन्सानों पर चलता था। मकदूम बख्श का नशा इस सुलतान दूल्हे से उतरता था। साठ वर्ष बीत जाने पर भी मकदूम बख्श पर चलने वाले इस सुलतान दूल्हे के सड़ाकों की आवाज अभी भी अनेक बार मेरे कानों में गूँज उठती है। उस जमाने में मेरे पिताजी ही नहीं, अनेक जमींदार, ताल्लुकेदार और आला अफसर्स से लेकर पुलिस इन्सपेक्टर और पुलिस के सिपाही तक, जब किसी पर कुपित होते, सुलतान दूल्हा जैसे ही चाबुकों से निरीह लोगों की चमड़ी चीथा करते थे। गरीबों से बेगार लेते और न जाने क्या-क्या ! हुक्मअदूली तो उस जमाने में बर्दाश्त के बाहर की बात होती। ऐसे अनेक लोगों को जिनके पास दौलत होती या कोई सरकारी ओहदा, वक्त-बे-वक्त और बात-बात पर अपना यह शौक पूरा करने का कोई कानूनन अधिकार न होते हुए भी भरपूर आज़ादी रहती थी और मातहत कर्मचारी अथवा गरीब मजदूर इस प्रकार मार खाने के अभ्यस्त भी हो चुके थे। उज्र-एतराज तो होता ही नहीं और न बाद में कोई सुनवाई। मकदूम बख्श का नशा चाहे इस सुलतान दूल्हे से उतर जाता हो और जिन पर इस प्रकार के प्रहार होते, उन्हें भले ही मोटी-मोटी इनामें देकर इसका परिमार्जन भी कर दिया जाता हो, किन्तु किसी का नशा उतारने अथवा किसी भी कारण या अकारण ही एक मानव द्वारा दूसरे मानव पर अपने कोप का यह स्वरूप आचरण की दृष्टि से वीभत्स ही माना जायेगा। मानव के इसी आचरण का परिणाम यह हुआ कि जमाना बदला और उसने किसी का नशा उतारने के लिए सुलतान दूल्हा जैसे चाबुक का प्रयोग करने वाले वर्ग का ही आज नशा उतार दिया। उस जमाने में अपने मातहत कर्मचारियों अथवा किसी श्रमिक मजदूर पर सुलतान दूल्हे का प्रयोग करना जितना आसान था, आज के जमाने में प्रयोग की तो कौन कहे, उसकी कल्पना भी उतनी ही भयावह है।

जबलपुर में हिन्दुओं का दशहरा और मुसलमानों का मुहर्रम दोनों त्योहार बड़े धूम-धाम से मनाये जाते हैं। उस समय हिन्दुओं के इस त्योहार में मुसलमान और मुसलमानों के इस त्योहार में हिन्दू बड़े उत्साह से सम्मिलित होते थे। इन दोनों ही त्योहारों पर मकदूम बख्श की अध्यक्षता में हमारे घोड़ों की बग्घियाँ और ये नाचने तथा लंगूरी चलने वाले घोड़े जुलूसों व सवारियों में निकलते थे। इन त्योहारों के सिवा जबलपुर की ब्याह-शादियों में भी इन बग्घियों और इन घोड़ों की बड़ी माँग रहती थी। सभी जगह अपनी आकृति और हुनर के कारण मकदूम बख्श का बड़ा भारी जलवा रहता था। उस समय वे एक व्यक्ति ही नहीं, एक प्रकार की संस्था बन गये थे।

शब्दार्थ-टिप्पणी

छकनी घोड़ों द्वारा खींची जानेवाली गाड़ी **आबनूस** तेंदू नामक एक जंगली पेड़ **सादृश्य** समान **वर्दी** गणवेश **मातहती** नीचे **हुनर** कला **हुक्म अदूली** आदेश का पालन करना **बर्दाश्त** सहन करना **ओहदा** पद **उज्र-एतराज** आपत्ति न होना **परिमार्जन** निखारना

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) अंग्रेज सरकार ने किसे और क्या उपाधि दी ?

(2) सामंतशाही काल में पितामह की शानो-शौकत क्यों बढ़ गई ?

(3) तत्कालीन समाज में किस सवारी का सर्वाधिक महत्व था, क्यों ?

(4) मकदूम बख्श क्या काम करते थे ?

(5) बग्घी के लिए कौन से घोड़े सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे ?

(6) मकदूम बख्श के वर्दी की क्या विशेषता थी ?

(7) मकदूम बख्श अन्य रियासतों में भी क्यों प्रसिद्ध थे ?

(8) मकदूम बख्श का सबसे बड़ा दोष क्या था ? उनका नशा कैसे उतारा जाता था ?

(9) सुल्तान-दूल्हे से आप क्या समझते हैं ?

2. उत्तर लिखिए :

(1) मकदूम बख्श के किन गुणों और किन दुर्गुणों का उल्लेख किया गया है ?

(2) अन्य रियासतों से प्राप्त सौगातों को मकदूम बख्श सबसे पहले किसके सामने रखते थे ? क्यों ?

(3) लेखक के अनुसार चाबुक की मार वीभत्स क्यों है ?

(4) हिन्दू-मुस्लिम त्योहारों पर मकदूम बख्श की क्या भूमिका रहती थी ?

(5) मकदूम बख्श के चरित्र पर प्रकाश डालिए ?

3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

''उस काल में अलग-अलग धर्म मानने वालों का भी परस्पर जो सम्बन्ध था, वह अनुकरणीय था।''

योग्यता-विस्तार

- 'धार्मिक सहिष्णुता' पर निबंध लिखिए।
- 'दमन किसी समस्या का निराकरण नहीं है' - कक्षा में चर्चा कीजिए।

●

5 पत्नी

जैनेन्द्र कुमार

(जन्म : सन् 1905 ई. ; निधन : सन् 1988 ई.)

जैनेन्द्रजी का जन्म अलीगढ़ के कौड़ियागंज में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा हस्तिनापुर के ब्रह्मचर्य आश्रम में हुई। कुछ समय बाद वे दिल्ली में आकर बस गए और यहाँ असहयोग आंदोलन में जुड़कर पढ़ाई छोड़ दी। गाँधी दर्शन से वे बहुत प्रभावित हुए। सामाजिक चिन्तन के क्षेत्र में आगे बढ़ते हुए उन्होंने कई निबंध भी लिखे। हिन्दी कथा-साहित्य में वे मनोवैज्ञानिकता के पक्ष को लेकर प्रवेश करते हैं। मानव-मन के रहस्यों एवं ग्रंथियों का विश्लेषण उनके कथा साहित्य की प्रमुख पहचान बनी। उन्हें व्यक्ति के अंतर्मन के कलाकार के रूप में पहचाना गया।

जैनेन्द्रजी के प्रमुख उपन्यास हैं – परख, त्यागपत्र, कल्याणी, सुनीता, सुखदा तथा विवर्त आदि। उनके कहानी संग्रहों में फाँसी, वातायन, नीलम देश की राज कन्या, एक रात, पाजेब तथा दो चिड़ियाँ प्रमुख हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में नारी-चरित्रों की बड़ी संख्या है। नारी चरित्रों, सामाजिक-मानसिक स्थितियों एवं उनकी अंतरंग चारित्रिक विशेषताओं का उन्होंने सूक्ष्म निरूपण किया है। सुनीता, सुनंदा, मृणाल उनके अविस्मरणीय चरित्र हैं।

प्रस्तुत कहानी में क्रांतिकारी पति के उपेक्षापूर्ण आचरण से पीड़ित एक पतिव्रता नारी की मनोवेदना का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। कहानी की नायिका सुनंदा की पीड़ा दोहरी है। वह एक माँ भी है और पति की लापवाही के कारण उचित दवा-दारू के अभाव में अपने बच्चे को खो बैठी है। बच्चे की अकालमृत्यु की पीड़ा उसके मन को हर पल उद्वेलित करती रहती है। फिर भी पत्नी और माँ के रूप में दोहरी मार झेल रही सुनंदा अपने पति की छोटी-छोटी बातों का ख्याल रखती हुई भारतीय नारी के संस्कारों का परिचय देती है।

शहर के एक ओर एक तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ चौके में एक स्त्री अँगीठी सामने लिए बैठी है। अँगीठी की आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच रही है। उसकी अवस्था बीस-बाईस के लगभग होगी। देह से कुछ दुबली है और संभ्रांत कुल की मालूम होती है।

एकाएक अँगीठी में राख होती हुई आग की ओर स्त्री का ध्यान गया। घुटनों पर हाथ देकर वह उठी। उठकर वह कुछ कोयले लाई। कोयले अँगीठी में डालकर फिर किनारे ऐसे बैठ गई, मानो याद करना चाहती है कि 'अब क्या करूँ?' घर में और कोई नहीं है और समय बारह से ऊपर हो गया है।

दो प्राणी इस घर में रहते हैं, पति और पत्नी। पति सवेरे से गए लौटे नहीं और पत्नी चौके में बैठी है।

सुनंदा सोचती है-नहीं, सोचती कहाँ है, अलसभाव से वह तो वहाँ बैठी ही है। सोचने को है तो यही कि कोयले न बुझ जाएँ। वह जाने कब आएँगे। एक बज गया है कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए, और सुनंदा बैठी है। वह कुछ कर नहीं रही है। जब वह आएँगे तब रोटी बना देगी। वह जाने कहाँ-कहाँ देर लगा देते हैं। और कब तक बैठूँ ! मुझसे नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आए हैं। और उसने झल्लाकर तवा अँगीठी पर रख दिया। नहीं अब यह रोटी बना ही लेगी। उसने जोर से खीझकर आटे की थाली सामने खींच ली और रोटी बेलने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने ज़ीने पर पैरों की आहट सुनी। उसके मुख पर कुछ तल्लीनता आई। क्षण-भर वह आभा उसके चेहरे पर रहकर चली गई। फिर उसी भाँति काम में लग गई।

कालिंदीचरण (पति) आए। उनके पीछे-पीछे तीन और उनके मित्र भी आए। वे आपस में बातें करते चले आ रहे थे। और खूब गर्म थे। कालिंदीचरण मित्रों के साथ सीधे अपने कमरे में चले गए। उनमें बहस छिड़ी थी। कमरे में पहुँचकर रुकी हुई बहस फिर छिड़ गई। ये चारों व्यक्ति देशोद्धार के संबंध में बहुत कटिबद्ध हैं। चर्चा उसी सिलसिले में चल रही है। भारत माता को स्वतंत्र कराना होगा—और नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत

देखा। मीठी बातों से बाघ के मुँह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है। आतंक ! हाँ आतंक ! हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा ? लोग हैं जो कहते हैं, आतंकवादी मूर्ख हैं, वे बच्चे हैं। हाँ, वे हैं बच्चे और मूर्ख। उन्हें बुजुर्गी और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल-बच्चों का। हमें नहीं गर्ज धन-दौलत की। तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं हैं? जुल्म होगा ही। उससे वे डरें जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं हैं।

फिर वे चारों आदमी निश्चय करने में लगे कि उन्हें खुद क्या करना चाहिए। इतने में कालिंदीचरण को ध्यान आया कि न उसने खाना खाया है, न मित्रों को खाने के लिए पूछा है। उसने अपने मित्रों से माफी माँगकर छुट्टी ली और सुनंदा की ओर चला।

सुनंदा जहाँ थी, वहाँ है, वह रोटी बना चुकी है। अँगीठी के कोयले उल्टे तवे से दबे हैं। माथे को उँगलियों पर टिकाकर वह बैठी है। बैठी-बैठी सूनी-सी देख रही है। सुन रही है कि उसके पति कालिंदीचरण अपने मित्रों के साथ क्यों और क्या बातें कर रहे हैं। उसे जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है, स्पृहणीय और मनोरम और हरियाली। वह भारत माता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है पर उसको न भारतमाता समझ में आती है न स्वतंत्रता समझ में आती है। उसे उन लोगों की इस जोरों की बातचीत का मतलब ही समझ में नहीं आता। फिर भी, उत्साह की उसमें बड़ी भूल है। जीवन की हौंस उसमें बुझती-सी जा रही है, पर वह जीना चाहती है। उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी कुछ देश की बात करे। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे-धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी? सोचती है, कम पढ़ी हूँ, तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है? अब तो पढ़ने को मैं तैयार हूँ, लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है। खैर, उसने सोचा है, उसका काम तो सेवा है। बस, यह मानकर जैसे कुछ समझने की चाह ही छोड़ दी है। वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है और कभी उनकी राह के बीच में आने को नहीं सोचती! वह एक बात जान चुकी है कि उसके पति ने अगर आराम छोड़ दिया है, घर का काम छोड़ दिया है, जान-बूझकर उखड़े-उखड़े और मारे-मारे जो फिरते हैं, इसमें वे कुछ भला ही सोचते होंगे। इसी बात को पकड़कर वह आपत्ति-शून्य भाव से पति के साथ विपदा-पर-विपदा उठाती रही है। पति ने कहा भी है कि तुम मेरे साथ क्यों दु:ख उठाती हो, पर सुनकर वह चुप रह गई है, सोचती रह गई है कि जिसे 'सरकार' कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरह के कामों से बहुत नाराज है। सरकार सरकार है। उसके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि 'सरकार' क्या होती है, पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी ताकतें हैं। इतनी फौज, पुलिस के सिपाही और मजिस्ट्रेट और मुंशी और चपरासी और थानेदार और वायसराय ये सरकार के ही हैं। इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है? हाकिम से लड़ना ठीक बात नहीं है, पर यह उसी लड़ने में तन-मन बिसार बैठे हैं। खैर, लेकिन ये सब-के-सब इतने जोर से क्यों बोलते हैं? उसको यही बहुत बुरा लगता है। सीधे-सादे कपड़ों में एक खुफिया पुलिस का आदमी हरदम उनके घर के बाहर रहता है। ये लोग इस बात को क्यों भूल जाते हैं? इतने जोर से क्यों बोलते हैं?

बैठे-बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही है। देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र न मेरी फिक्र। मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी बेपरवाही से तो बच्चा चला गया। उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले, पर अकेली जब होती है, तब भटक-भटककर वह मन अंत में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुँचता है। तब उसे बच्चे की वही-वही बातें याद आती हैं,-वे बड़ी प्यारी आँखें, अँगुलियाँ और नन्हे-नन्हे होंठ याद आते हैं-अठखेलियाँ याद आती हैं। सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है। ओह ! यह मरना क्या है। इस मरने की तरफ उससे देखा नहीं जाता। यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है - उसको मरना है, उसके पति को मरना है; पर उस तरफ भूल से छन-भर देखती है, तो भय से भर जाती है। यह उससे सहा नहीं जाता। बच्चे की याद उसे मथ उठती है। यह विह्वल होकर आँख पोंछती है और हठात् इधर-उधर की किसी काम की बात में अपने को उलझा लेना चाहती है, पर अकेले में वह कुछ करे, रह-रहकर वही वह याद-वही वह मरने की बात उसके सामने ही रहती है और उसका चित्त बेबस हो जाता है।

वह उठी। अब उठकर बरतनों को माँज डालेगी, चौका भी साफ करना है। आह! खाली बैठी मैं क्या सोचती रहा करती हूँ।

इतने में कालिंदीचरण चौके में घुसे।

सुनंदा कठोरतापूर्वक शून्य को ही देखती रही। उसने पति की ओर नहीं देखा।

कालिंदी ने कहा, "सुनंदा, खानेवाले हम चार हैं। खाना हो गया ?"

सुनंदा चून की थाली और चकला-बेलन और बटलोई वगैरह खाली बरतन उठाकर चल दी, कुछ भी बोली नहीं।

कालिंदी ने कहा, ''सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके तो कहो, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।''

सुनंदा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। वे उससे क्षमाप्रार्थी-से क्यों बात कर रहे हैं, हँसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना-वाना। और वह चुप रही।

कालिंदीचरण ने जरा जोर से कहा, ''सुनंदा !''

सुनंदा के जी में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फेंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे-बैठे इन्हीं अपने पति के बारे में कैसी प्रीति की और भलाई की बातें सोच रही थी। इस वक्त भीतर-ही-भीतर गुस्से से घुटकर रह गई।

''क्यों ! बोल नहीं सकती ?''

सुनंदा नहीं ही बोली।

''तो अच्छी बात है। खाना कोई भी नहीं खाएगा।''

यह कहकर कालिंदी तैश में पैर पटकते हुए लौटकर चले गए।

कालिंदीचरण अपने दल में उग्र नहीं समझे जाते, किसी कदर उदार समझे जाते हैं। सदस्य अधिकतर अविवाहित हैं, कालिंदीचरण विवाहित ही नहीं हैं, वह एक बच्चा खो चुके हैं। उनकी बात का दल में आदर है। कुछ लोग उनके धीमेपन पर रुष्ट भी हैं। वह दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं और उत्ताप पर अंकुश का काम करते हैं।

बहस इतनी बात पर थी कि कालिंदी का मत था कि हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक से विवेक कुंठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है, या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं। सरकार व्यक्ति के और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठकर उसे दबाना चाहती है। हम इसी विकास के अवरोध को हटाना चाहते हैं-इसी को मुक्त करना चाहते हैं। आतंक से वह काम नहीं होगा। जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारने और उसमें कर्तव्य-भावना का प्रकाश जगाने का है। हम स्वीकार करें कि मद उसकी टक्कर खाकर, चोट पाकर ही उतरेगा। यह चोट देने के लिए हमें अवश्य तैयार रहना चाहिए, पर यह नोचा-नोची उपयुक्त नहीं। इससे सत्ता का कुछ बिगड़ता तो नहीं, उल्टे उसे अपने औचित्य पर संतोष हो आता है।

पर जब (सुनंदा के पास से) लौटकर आया, तब देखा गया कि कालिंदी अपने पक्ष पर दृढ़ नहीं है। वह सहमत हो सकता है कि हाँ, आतंक जरूरी भी है। ''हाँ'', उसने कहा, ''यह ठीक है कि हम लोग कुछ काम शुरू कर दें।'' इसके साथ ही कहा, ''आप लोगों को भूख नहीं लगी है क्या ? उनकी तबीयत खराब है, इससे यहाँ तो खाना बना नहीं। बताओ क्या किया जाए ? कहीं होटल चलें ?''

एक ने कहा कि कुछ बाजार से यहीं मँगा लेना चाहिए। दूसरे की राय हुई कि होटल ही चलना चाहिए। इसी तरह की बातों में लगे थे कि सुनंदा ने एक बड़ी थाली में खाना परोसकर उनके बीच ला रखा। रखकर वह चुपचाप चली गई। फिर आकर पास ही चार गिलास पानी रख दिए और फिर उसी भाँति चुपचाप चली गई।

कालिंदी को जैसे किसी ने काट लिया।

तीनों मित्र चुप हो रहे। उन्हें अनुभव हो रहा था कि पति-पत्नी के बीच स्थिति में कहीं कुछ तनाव पड़ा हुआ है। अंत में एक ने कहा, ''कालिंदी, तुम तो कहते थे, खाना नहीं है ?''

कालिंदी ने झेंपकर कहा, ''मेरा मतलब था, काफी नहीं है।''

दूसरे ने कहा, ''बहुत काफी है। सब चल जाएगा।''

''देखूँ, कुछ और हो तो,'' कहकर कालिंदी उठ गया।

आकर सुनंदा से बोला, ''यह तुमसे किसने कहा था कि खाना वहाँ ले आओ ?

मैंने क्या कहा था ?!''

सुनंदा कुछ न बोली।

''चलो, उठाकर लाओ थाली। हममें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल जाएँगे।''

सुनंदा नहीं बोली। कालिंदी भी कुछ देर गुम खड़ा रहा। तरह-तरह की बातें उसके मन में और कंठ में आती थीं। उसे अपना अपमान मालूम हो रहा था, और अपमान उसे असह्य था।

उसने कहा, ''सुनती नहीं हो कि कोई क्या कह रहा है ! क्यों ?''

सुनंदा ने और मुँह फेर लिया।

''क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ ?''

सुनंदा भीतर-ही-भीतर घुट गई।

''मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था, तब खाना ले जाने की क्या जरूरत थी ?''

सुनंदा ने मुड़कर और अपने को दबाकर धीमे से कहा, ''खाओगे नहीं ? एक तो बज गया।''

कालिंदी निरस्त्र होने लगा। यह उसे बुरा मालूम हुआ। उसने मानो धमकी के साथ पूछा, ''खाना और है ?''

सुनंदा ने धीमे से कहा, ''अचार लेते जाओ।''

''खाना और नहीं है ? अच्छा, लाओ अचार।''

सुनंदा ने अचार ला दिया और लेकर कालिंदी भी चला गया।

सुनंदा ने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा है। उसे यह सूझा ही न था कि उसे भी खाना है। अब कालिंदी के लौटने पर उसे जैसे मालूम हुआ कि उसने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा है। वह अपने से रुष्ट हुई। उसका मन कठोर हुआ; इसलिए नहीं कि उसने खाना क्यों नहीं बचाया। इस पर तो उसमें स्वाभिमान का भाव जागता था। मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरह की बातें सोचती ही क्यों है ? छि: ! यह भी सोचने की बात है ! और उसमें कड़वाहट भी फैली। हठात् यह उसके मन को लगता ही है कि देखो, उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी ! क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊँ और उनके मित्र भूखे रहें, पर पूछ लेते तो क्या था। इस बात पर उसका मन टूटता-सा है। मानो उसका जो तनिक-सा मान था, वह भी कुचल गया हो। पर वह रह-रहकर अपने को स्वयं अपमानित कर लेती हुई कहती है कि छि: ! छि: ! सुनंदा, तुझे ऐसी जरा-सी बात का अब तक खयाल होता है ! तुझे खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला। मैं क्या उन्हें नाराज करती हूँ ? अब से नाराज न करूँगी, पर वह अपने तन की भी सुध तो नहीं रखते ! यह ठीक नहीं है। मैं क्या करूँ ! और वह अपने बरतन माँजने में लग गई। उसे सुन पड़ा कि वे लोग फिर जोर-शोर से बहस करने में लग गए हैं। बीच-बीच में हँसी के कहकहे भी उसे सुनाई दिए। 'ओह !' सहसा उसे खयाल हुआ, ''बरतन तो पीछे भी मल सकती हूँ, लेकिन उन्हें कुछ जरूरत हुई तो ?'' यह सोच, झटपट हाथ धो वह कमरे के दरवाजे के बाहर दीवार से लगकर खड़ी हो गई।

एक मित्र ने कहा, ''अचार और है ? अचार और मँगाओ यार !''

कालिंदी ने अभ्यासवश जोर से पुकारा, ''अचार लाना भई, अचार !'' मानो सुनंदा कहीं बहुत दूर हो, पर यह तो बाहर द्वार से लगी खड़ी ही थी। उसने चुपचाप अचार लाकर रख दिया।

जाने लगी, तो कालिंदी ने तनिक स्निग्ध वाणी से कहा, ''थोड़ा पानी भी लाना।'' और सुनंदा ने पानी ला दिया। देकर लौटी और फिर बाहर द्वार से लगकर ओट में खड़ी हो गई। जिससे कालिंदी कुछ माँगे, तो जल्दी से ला दे।

शब्दार्थ-टिप्पणी

तिरस्कार उपेक्षित, त्यागा हुआ **संभ्रान्त** कुलीन **फिक्र** चिन्ता, परवाह **आभा** चमक, कांति **अभिलाषा** इच्छा **स्पृहणीय** इच्छित **मनोरम** सुन्दर **हौंस** इच्छा **विह्वल** गद्‌गद् होना **हठात्** जबरदस्ती, जबरन **तैश** क्रोध **रुष्ट** नाराज, अप्रसन्न **उत्ताप** क्रोध **स्निग्ध** स्नेह

मुहावरे

गद्‌गद् होना – अति प्रसन्न होना

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) सुनन्दा के झल्लाने और खीझने का कारण क्या था ?

(2) सुनन्दा अन्यमनस्क-सी बैठी क्या सोच रही है ?

(3) जीने में पैरों की आहट सुनते ही सुनन्दा का चेहरा क्यों खिल उठा ?

(4) कालिंदीचरण और उसके मित्र किस विषय पर और क्यों बहस कर रहे थे ?

(5) पति कालिंदीचरण की बातें सुनन्दा की समझ से परे क्यों हैं ?

(6) कालिंदीचरण आतंक को छोड़ने के पक्ष में क्यों हैं ?

(7) सरकार के विषय में सुनन्दा की सोच क्या है ?

(8) कालिंदीचरण खाना खाने से इन्कार क्यों करते हैं ?

(9) 'बाघ को मारना ही एक इलाज है' – कालिंदी चरण ऐसा क्यों कहते हैं ?

2. उत्तर लिखिए :

(1) दल में कालिंदीचरण की छवि कैसी है ?

(2) कालिंदीचरण राष्ट्र में किस प्रकार की स्वतंत्रता चाहते हैं ?

(3) सुनन्दा के चरित्र पर प्रकाश डालिए ?

(4) पति-पत्नी के आन्तरिक सम्बन्धों में तनाव का क्या कारण है ? स्पष्ट कीजिए।

3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

(1) ''सोचती है कम पढ़ी हूँ तो इसमें मेरा क्या कसूर है। अब तो पढ़ने को तैयार हूँ लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है।''

(2) ''आतंक से विवेक कुंठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है या उसके भय से दबा रहता है।''

(3) ''जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारना और उसमें कर्तव्य-भावना का प्रकाश जगाना है।''

4. मुहावरे का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

(1) गद्‌गद् होना (2) गले लगाना

5. सन्धि विच्छेद कीजिए :

देशोद्धार, तल्लीन, यद्यपि, निरस्त्र

योग्यता-विस्तार

- स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित कहानियाँ पढ़िए।
- 'नारी-शिक्षा' पर आधारित कोई नाटक प्रस्तुत कीजिए।

●

6 राजस्थान के एक गाँव की तीर्थयात्रा

भीष्म साहनी

(जन्म : सन् 1915 ई. ; निधन : सन् 2003 ई.)

कथाकार-नाटकार भीष्म साहनी का जन्म पाकिस्तान के रावलपिंडी नामक शहर में हुआ था। उनकी उच्च शिक्षा लाहौर में हुई। पीएच.डी. करने के बाद दिल्ली के जाकिर हुसैन कॉलेज में अंग्रेजी के अध्यापक के रूप में काम किया। उन्हें नाट्य-लेखन एवं मंचन की प्रेरणा अपने बड़े भाई बलराज साहनी से प्राप्त हुई।

'बसंती', 'कड़ियाँ', 'झरोखे' तथा 'तमस' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। शोभायात्रा, भाग्येरखा, वाङ्चू, भटकती राख, पटरियाँ उनके कहानी संग्रह हैं। उनके मंचीय नाटक हैं - हानूश और कबिरा खड़ा बजार में। सांप्रदायिक वैमनस्य एवं वर्गभेद-जनित स्थितियों का यथार्थ चित्रण इनकी रचनाओं में हुआ है। युगीन परिवेश के यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं की विशिष्ट उपलब्धि है। 'तमस' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी, दिल्ली का पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'तमस' पर से हिन्दी धारावाहिक भी बना था।

'राजस्थान के एक गाँव की तीर्थ यात्रा' में तिलोनिया नामक गाँव की यात्रा एवं गाथा का वर्णन रिपोर्ताज शैली में किया गया है। इस आदर्श और नमूनेदार गाँव में बने स्वावलंबी केन्द्र का विस्तृत परिचय दिया गया है। यह केन्द्र गाँव के लोगों को पारंपरिक शिल्प तथा अन्य उपलब्ध साधनों के इस्तेमाल द्वारा आत्मनिर्भर बनाना सिखाता है। यहाँ वर्षों के जल-संग्रह और उसके संरक्षण की अद्भुत व्यवस्था है। वर्षा के संचित जल और सौर ऊर्जा द्वारा बिजली प्राप्त की जाती है। रात्रि पाठशालाओं द्वारा लोगों को शिक्षित किया जाता है। लेखक को लगता है कि गाँवों को इसी तरह स्वच्छ एवं स्वावलंबी बनाकर गाँधी के सपनों का भारत निर्मित हो सकता है।

मुझे मालूम नहीं था कि भारत में 'तिलोनिया' नाम की भी कोई जगह है जहाँ हमारे देश के समसामयिक इतिहास का एक विस्मयकारी पन्ना लिखा जा रहा है। किसी बड़े शहर में रहते हुए हम केवल अखबार द्वारा ही देश-विदेश के बारे में अपनी जानकारी हासिल करते हैं। और आजकल तो इस जानकारी से मन अशांत और क्षुब्ध ही होता है। दिल्ली में से निकलने का एक कारण तो इस अखबारी माहौल से निकलने की तीव्र इच्छा थी। यों, बला की गरमी पड़ रही थी, यहाँ तक कि जिस किसी से कहो कि हम लोग राजस्थान जा रहे हैं तो झट से यही सुनने को मिलता, ''पगला गए हो क्या? इतनी गरमी में राजस्थान जाओगे?''

उस वक्त तक तिलोनिया के बारे में मुझे इतनी ही जानकारी थी कि वहाँ पर एक स्वावलंबी विकास केन्द्र चल रहा है, जिसे स्थानीय ग्रामवासी, स्त्री-पुरुष मिलजुलकर चला रहे हैं। बस, इतना ही और मैं वहाँ अपने किसी प्रयोजन से भी नहीं जा रहा था। मैं अपने वास्तुकार दामाद के साथ जिन्हें वहाँ अपना कोई काम था, मात्र एक साथी के नाते जा रहा था।

मुंबई को जाने वाली जरनैली सड़क को छोड़कर हमारी जीप एक तंग राजस्थानी सड़क पर आ गई थी। मतलब साफ़, समतल सड़क को छोड़कर ऊबड़-खाबड़ पर आ गई थी। पर यहाँ भी दूर-दूर तक कुछ दिखाई नहीं देता था, केवल सपाट मैदान, कँटीली झाड़ियों के झुरमुट और दोपहर का बोझिल वातावरण। लगता था, हवा में पिघला काँच घुला है। फिर सहसा ही हमारी जीप ने एक मोड़ काटा और हम तिलोनिया की छोटी-सी बस्ती में थे।

बस्ती क्या थी, कुछ पुराने और कुछ नए छोटे-छोटे घरों का झुरमुट थी। पुराने घर तो अंग्रेजों के ज़माने के जान पड़ते थे। बाद में पता चला था कि वहाँ कभी तपेदिक के रोगियों का स्वास्थ्यगृह रहा था। शेष घर नए-नए बने जान पड़ते थे, चारों ओर चुप्पी थी और दोपहर की अलसाहट। धीरे-धीरे तिलोनिया के राज़ खुलने लगे। पहली जानकारी तो भोजन पर बैठते समय ही हो गई जब एक सज्जन मेरे हाथ धुला रहे थे।

''जहाँ पर हम खड़े हैं, उसके नीचे एक तालाब है। हम लोग तालाब की छत पर खड़े हैं।'' मैं अभी दाएँ-बाएँ, उस छिपे हुए तालाब का जायज़ा ले ही रहा था जब वह कहने लगे, ''इस ताल में बारिश का पानी इकट्ठा होता रहता है। बरसात के दिनों

में छतों पर से गिरने वाला जल सीधा इस ताल में चला जाता है। ऐसे ही बहुत से ताल हमने जगह-जगह बना रखे हैं।''

इससे पहले कि मैं उनसे कुछ पूछूँ, उन्होंने मेरे चेहरे के भाव से ही मेरे सवाल को समझ लिया होगा। कहने लगे, ''इस बारिश के पानी को हम साफ़ कर लेते हैं। उसे पीते हैं, उस पानी से अपनी खेती-बाड़ी करते हैं। राजस्थान की धरती तो जल के लिए तरसती है ना। अब तो ऐसे ही एक सौ दस ताल हमने अपने इस इलाके में जगह-जगह बना रखे हैं। हमारे स्कूलों और सामुदायिक केन्द्रों में जल-संरक्षण व संग्रहण की व्यवस्था कर दी गई है। यहाँ तिलोनिया में जल के संरक्षण का प्रबंध बहुत पहले कर लिया गया था।''

''इस संस्थान की स्थापना कब हुई थी?'' मैंने पूछा। ''1972 में'' वह बोले, फिर कुछ याद करते हुए से कहने लगे, ''यह वह ज़माना था जब जगह-जगह अनेक युवाजन अपनी पहलकदमी पर कुछ नया कर दिखाना चाहते थे जो देश के विकास के लिए हितकर हो। अनेक स्थानों पर, अपने-अपने विचारानुसार अनेक प्रयोग किए गए। उनमें से एक यह भी था। ऐसी मंडलियाँ, मुख्यत: गाँव को ही केन्द्र में रखकर अपने प्रयोग करना चाहती थीं और अक्सर लोग-बाग उनकी खिल्ली उड़ाया करते थे कि पिछड़े हुए गाँवों में जाकर क्या करोगे? यह प्रयोग निश्चय ही सफल हुआ।''

वह कह रहे थे, ''इसका गठन किया था, बंकर राय नाम के एक सुशिक्षित व्यक्ति ने। वे अपने साथ एक टाइपिस्ट और एक फ़ोटोग्राफ़र को लेकर यहाँ चले आए थे। यही उनकी मंडली थी। यह 1972 की बात है। सरकार से उन्होंने लीज़ पर 45 एकड़ सरकारी ज़मीन ली, साथ में तपेदिक के मरीज़ों के लिए किसी ज़माने में बनाए गए सेनेटोरियम के 21 छोटे-मोटे मकान थे। ज़मीन को एक रुपया महीना के हिसाब से लीज़ पर लिया और अपने संस्थान की स्थापना कर दी। संस्थान का नाम था — सामाजिक कार्य तथा शोध संस्थान (एस.डबल्यू.आर.सी.)। उन दिनों तिलोनिया गाँव की आबादी दो हज़ार की रही होगी।''

मेरे मन में संशय उठने लगे थे। आज के ज़माने में वैज्ञानिक उपकरणों और जानकारी के बल पर ही तरक्की की जा सकती है। उससे कटकर या उसकी अवहेलना करते हुए नहीं की जा सकती। एक पिछड़े हुए गाँव के लोग अपनी समस्याएँ स्वयं सुलझा लेंगे, यह नाममुकिन था। पर वह सज्जन कहे जा रहे थे — ''हमारे गाँव आज नहीं बसे हैं। इन गाँवों में शताब्दियों से हमारे पूर्वज रहते आ रहे हैं। पहले जमाने में भी हमारे लोग अपनी सूझ और पहलकदमी के बल पर ही अपनी दिक्कतें सुलझाते रहे होंगे। ज़रूरत इस बात की है कि हम शताब्दियों की इस परंपरागत जानकारी को नष्ट नहीं होने दें। उसका उपयोग करें।'' फिर मुझे समझाते हुए बोले — ''हम बाहर की जानकारी से भी पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं, पर हम मूलत: स्वावलंबी बनना चाहते हैं, स्वावलंबी, आत्मनिर्भर।''

वह सज्जन अपने प्रयासों की चर्चा कर रहे थे और मुझे बार-बार गांधी जी के कथन याद आ रहे थे। मैंने गांधी जी का ज़िक्र किया तो वह बड़े उत्साह से बोले — ''आपने ठीक ही कहा है। यह संस्थान गांधी जी की मान्यताओं के अनुरूप ही चलता है - सादापन, कर्मठता, अनुशासन, सहभागिता। यहाँ सभी निर्णय मिल-बैठकर किए जाते हैं। आत्मनिर्भरता...।''

''आत्मनिर्भरता से क्या मतलब ?'' ''आत्मनिर्भरता से मतलब कि ग्रामवासियों की छिपी क्षमताओं को काम में लाया जाए। और गांधी जी के अनुसार, ग्रामवासी अपनी अधिकांश बुनियादी ज़रूरत की वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करें...।'' मैं बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह कह रहे थे — ''कोई भी काम हाथ में लेने से पहले सभी ग्रामवासियों का प्रतिनिधित्व करने वाली बैठक बुलाई जाती है। ग्रामवासियों की अपनी समिति चुनी जाती है, जिसमें गरीब लोगों तथा महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती है, विशेष रूप से दलित तथा गरीब महिलाओं को। हमारे संस्थान का मूल आशय गाँव की दरिद्र जनता की मूलभूत ज़रूरतों को पूरा करने के लिए परंपरागत जानकारी और व्यावहरिक अनुभव के आधार पर, साझे प्रयासों द्वारा, गाँव की अर्थव्यवस्था का विकास करना है। हमारे बहुत से काम बाहर के विशेषज्ञों और स्थानीय ग्रामवासियों के साझे प्रयास से हुए। पर उनके निर्णय और संचालन में आधारभूत भूमिका स्थानीय ग्रामवासियों की ही रही है...।''

हाथ-मुँह धोकर हम लोग भोजन कक्ष की ओर बढ़ गए। बरामदे में ही एक ओर पानी के बहुत से नल लगे थे। ''यह किस काम के लिए?'' मैंने पूछा तो वह सज्जन हँस दिए। ''भोजन कक्ष में बैठने वाले लोग, भोजन करने के बाद अपने बरतन यहीं पर साफ़ करते हैं। यहाँ नौकर-चाकर नहीं हैं।'' भोजन कक्ष में अनेक ग्रामवासी पुरुष-स्त्रियाँ बैठे भोजन कर रहे थे। सारा

प्रबंध प्रथानुसार फ़र्शी था। बड़े आनंद से भोज़न किया। पास बैठे लोगों की भाषा तो समझ में नहीं आती थी, पर उनके लहजों से बड़ा स्निग्ध-सा अपनापन झलकता था।

भोजन के बाद हमने भी बरतन धोए और ठिकाने पर रखे। पानी के ताल के पास हम फिर से खड़े थे जब मैंने पूछा — ''ताल के जल का उपयोग क्या आप और भी किसी काम के लिए करते हैं?'' वह झट से बोले — ''इससे बिजली पैदा करते हैं। इसी जल से हम बिजली निकालकर घरों को रोशनी पहुँचाते हैं।'' मैं चौंका, बारिश के पानी को साफ़ करके पिया जा सकता है, खेती-बाड़ी के काम में भी लाया जा सकता है, पर बिजली? ''वह कैसे?'' ''सूर्य की ऊर्जा से।'' अब की बार मेरे लिए यकीन करना कठिन हो रहा था। पर सहसा ही मुझे याद आया कि भोजन करते समय, छत पर से लटकता बिजली का पंखा चल रहा था।

वह कह रहे थे — ''सूर्य की ऊर्जा से मिलने वाली बिजली चकाचौंध तो नहीं करती, पर घरों में रोशनी पहुँचा जाती है। पंखे भी चल जाते हैं। किसी सीमा तक टेलीविजन के परदे पर चलचित्र भी देखने को मिल जाते हैं। हमारी ज़रूरतें किसी हद तक पूरी हो जाती हैं। इसी मूल लक्ष्य से प्रेरित होकर इस संस्थान की स्थापना हुई थी कि हम स्वावलंबी हों।''

फिर बड़े उत्साह से कहने लगे — ''तिलोनिया गाँव में स्थित लगभग साठ हज़ार वर्ग फ़ुट पर फैला हुआ इस संस्था का नया परिसर पूरी तरह सौर-ऊर्जा से चालित है। काफ़ी गहराई से पानी खींचने के पंप तथा अनेक कप्यूटरों की व्यवस्था सौर-ऊर्जा द्वारा ही की जाती है...।'' मैं मन-ही मन फिर से चौंका ! क्या इस जगह कंम्प्यूटर भी पहुँच गए हैं? पर वह बराबर बताए जा रहे थे, ''और उनकी देख-रेख और व्यवस्था मुख्यत: हमारे ग्रामीण सदस्य ही करते हैं। उनमें से अनेक इस काम में प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं। अब हमारी रात्रि पाठशालाओं में सौर-ऊर्जा से ही रोशनी मिलती है।''

''रात्रि पाठशालाओं से क्या मतलब? क्या यहाँ रात के वक्त पाठशालाओं में पढ़ाई होती है?'' ''जी, ऐसा ही है। दिन के वक्त गाँव के लड़के-लड़कियाँ खेती-बाड़ी या घर के काम में लगे रहते हैं — पशु चराना, बकरियों की देखभाल आदि। शाम पड़ने पर वे लोग पाठशाला में पहुँच जाते हैं। संस्थान ऐसे 150 स्कूल चला रहा है।'' वह गर्व से बोले, ''और इनमें 70 प्रतिशत लड़कियाँ पढ़ती हैं। हमारे यहाँ एक रात्रि पाठशाला भील जाति के बच्चों के लिए विशेष रूप से खोली गई है। संस्थान द्वारा चलाए जाने वाले 150 स्कूलों में से एक स्कूल भील बच्चों के लिए है।''

फिर कुछ याद करते हुए से, मुसकराने लगे। ''जिन दिनों हमारे यहाँ जल-संरक्षण की व्यवस्था नहीं थी और दूरदराज़ गिने-चुने कुएँ थे तो गाँव की लड़कियाँ दिनभर घड़े उठाए, पानी की खोज में भटकती रहती थीं। अब किसी भी लड़की को पानी के लिए भटकना नहीं पड़ता। अब ये हँसती-चहकती हुई पाठशाला में पढ़ने आती हैं।'' कहते हुए उनके चेहरे पर उपलब्धियों भरी मुस्कान उभर आई थी। फिर वह उसी गर्वीली आवाज़ में कहने लगे — ''हमारे संस्थान ने सौर-ऊर्जा से चलने वाले बिजलीघर, राजस्थान में ही नहीं, भारत के आठ राज्यों में भी चालित किए हैं।''

यह भी मेरे लिए चौंकाने वाली बात थी। वह सज्जन, अपने पपोटों पर अँगुली चलाते हुए उन राज्यों के नाम गिनाने लगे, ''राजस्थान के अतिरिक्त, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, मध्य प्रदेश, बिहार, असम तथा सिक्किम।... अब तो हमारे यहाँ अनेक राज्यों के ग्रामवासी ऊर्जा के प्रशिक्षण के लिए आते हैं। मैं आपको अपनी प्रयोगशाला दिखाऊँगा। वे लोग यहाँ से प्रशिक्षण प्राप्त कर, अपने गाँवों में लौटकर सौर-ऊर्जा की व्यवस्था करते हैं। लद्दाख जैसी जगह में लगभग 900 परिवारों को इन प्रयासों से सौर-ऊर्जा का लाभ मिला।'' फिर वह बताने लगे — ''सौर-ऊर्जा की दिशा में हमारा पहला प्रयास 1984 में हुआ था, जब हम लोग संस्थान के चिकित्सा केन्द्र के लिए सौर-ऊर्जा का उपयोग करना चाहते थे। और जब उपकरण लग गया तो संस्थान के लोगों ने ही उसकी देख-रेख का दायित्त्व अपने ऊपर ले लिया।'' कहते हुए वह सज्जन फिर से मुस्कुरा दिए।

''यहीं से हमारे पहले सौर ऊर्जा इंजीनियर तैयार होने लगे। हमारा उद्देश्य रहता है कि हम आत्मनिर्भर हों। हमारे यहाँ नल-मिस्त्री ही नहीं, घरों के नक्शे बनाने वाले तथा राज मिस्त्री, सौर-ऊर्जा की देखभाल करने वाले, धातु के काम करने वाले, सभी अपने लोग हैं। और उनमें कुछ तो निरक्षर हैं। हमारा सबसे बड़ा शिल्पी निरक्षर है, जिसने गृहनिर्माण के काम में सबसे अधिक योगदान दिया।'' जहाँ पर लोग खड़े थे, जलाशय से कुछ ही दूरी पर, एक गोलाकार छत वाली छोटी-सी इमारत की ओर इशारा करते हुए बोले, ''वह गोलाकार गुंबदनुमा छत वाली इमारत भी हमारे अपने कारीगरों की देन है।''

फिर, मेरे बाजू पर हाथ रख कर बोले — ''इसका यह मतलब नहीं कि हम, शहरों में रहने वाले सुशिक्षित विशेषज्ञों से दूर रहते हैं। हरगिज़ नहीं। उनका सहयोग लेते हैं, उस सहयोग का स्वागत करते हैं। यहाँ का बहुत कुछ साझे प्रयास की ही देन है। परंतु हम मूलत: अपनी क्षमताओं को ही बढ़ाते रहना चाहते हैं ताकि बात-बात पर बाहर के लोगों का मुँह नहीं जोहना पड़े। वास्तव में हमारे लोग बड़ी कुशलता से उपकरणों को चलाना सीख लेते हैं।''

अर्धगोलाकार गुंबद वाले छोटे से भवन के निकट ही मुझे एक चबूतरा-सा नज़र आया, जो बहुत ऊँचा तो नहीं था, पर मुझे लगा जैसे वह नाटक खेलने का मंच हो। किसी भी नाट्यगृह का मंच मुझे चुम्बक की तरह खींचता है। मैंने उसकी ओर इशारा किया, तो वह सज्जन बोले — ''पर हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि पुतलियों का खेल दिखाने की रही है, जो हमारे यहाँ बड़े लोकप्रिय हैं।''

फिर वह पुतलियों की चर्चा करने लगे — ''पुतलियों का तमाशा मात्र मनोरंजन का ही माध्यम नहीं है। वह प्रचार-प्रसार का, विचार-विमर्श का और भी अधिक सक्षम माध्यम है। गाँव-गाँव में, जहाँ शिक्षा से वंचित लोग रहते हैं, वहाँ पुतलियों के तमाशे के माध्यम से हम उनके जीवनयापन की चर्चा करते हैं, उनकी समस्याओं की भी। कभी-कभी तो तमाशे के दौरान ही देखने वालों के बीच बहस चल पड़ती है। पुतलियों के तमाशे से राजा-रानी की प्रेम कहानी ही नहीं सुनाई जाती, वहाँ ग्रामीण लोगों की समस्याओं—उधार लेने की समस्या, ऋण की अदायगी, छूतछात आदि ग्रामीण जीवन से संबद्ध अनेक मसलों पर विचार-विनिमय कर सकते हैं। इस तरह पुतलियों के तमाशों के द्वारा हम निरक्षर ग्रामवासियों को अधिक सचेत कर सकते हैं। इसी भाँति गाँव की स्त्रियों को पेश आने वाली समस्याओं के बारे में भी — उनकी सेहत-तंदुरुस्ती के बारे में, उनके अधिकारों के बारे में, उनकी पगार के बारे में (उन्हें भी मर्दों के बराबर पगार मिले), स्त्रियों के साथ की जाने वाली ज़्यादतियों के बारे में, बच्चों की देखभाल के बारे में आदि अनेक बातों को लेकर चर्चा होने लगती है। इतना ही नहीं, खेती-बाड़ी से जुड़ी अनेक योजनाओं की चर्चा की जाती है। पुतलियों का तमाशा इस तरह, एक बहुत बड़ी सामाजिक भूमिका निभाता है। पर इसका यह मतलब नहीं कि केवल विचार-विमर्श के लिए पुतलियों के तमाशे दिखाए जाते हैं। साथ में संगीत, सहगान, कितना कुछ रहता है।'' वह बड़े उत्साह से कहे जा रहे थे।

तभी संस्थान का कोई व्यक्ति, जो कोई कारीगर लगता था किसी ज़रूरी काम से उन्हें मिलने आया। वह कुछ समय तक, किसी स्थानीय समस्या को लेकर उसके साथ बतियाते रहे। जब वह चला गया तो कहने लगे — ''यह खराद पर काम करने वाला मिस्त्री है। मामूली पढ़ा-लिखा है, पर बहुत होशियार है। आपको एक किस्सा सुनाऊँ। बहुत दिन पहले की बात है, लगभग 1980 के आस-पास की। हमारे यहाँ कुएँ में से पानी खींचने के थोड़े से पंप लगे थे। पर जब कोई पंप बिगड़ जाता तो मुसीबत पड़ जाती कि उसकी मरम्मत कौन करे। फिर हमारे अपने लोगों ने पहलकदमी की और पंप ठीक करने का काम सीख लिया। अब हम तो संतुष्ट हो गए। पर यह समस्या केवल हमारी ही नहीं थी। पूरे राज्य में हज़ारों की संख्या में जल खींचने के पंप लगे थे। इस समस्या को सुलझाने के लिए हमारे संस्थान ने राज्य सरकार को सुझाव दिया कि वह इस काम के लिए बेरोज़गार युवकों को भरती कर ले और उन्हें ट्रेनिंग देकर नल ठीक करने का काम सिखा दे। इस पर पढ़े-लिखे इंजीनियर तो बहुत बिगड़े, पर राज्य सरकार हमारे संस्थान का सुझाव मान गई। आप सच मानिए, राज्य में ऐसे ही 600 के करीब 'बेरोज़गार' युवक इस समय राज्य के कुल 15,000 नलों की देख-रेख कर रहे हैं।''

हमारे यहाँ हर बात का फ़ैसला यहाँ के ग्रामीण लोग ही करते हैं। कोई छिपाव-दुराव नहीं है। प्रत्येक काम सबका साझा काम है, हर काम का दिशा-निर्देश यहाँ के लोग करते हैं। संस्थान में काम करने वालों में 90 प्रतिशत हमारे ग्रामीण लोग ही हैं। वे अपने काम के लिए अपना मनपसंद काम चुन लेते हैं, हमने अपनी ही पहलकदमी पर छोटे-छोटे दो-दो कमरों के घर बनवाए हैं। निर्माण के लिए पत्थर, शिलाएँ, सीमेंट, गारा-चूना, बजरी, ईट आदि लगभग सारा सामान हमें गाँव से ही उपलब्ध हो गया। और ऐसे ही पानी के ताल के निर्माण के लिए भी जिसमें चार लाख लीटर वर्षा का जल, हर साल इकट्ठा किया जा सकता है। और अब तक इतने ताल बनाए जा चुके हैं जिनमें लगभग दो करोड़ लीटर जल इकट्ठा किया जा सकता है।''

अब हम संस्थान के विभिन्न भागों का दौरा कर रहे थे। मेरे लिए, हर पग पर कोई-न-कोई चौंकाने वाली बात थी। वास्तव में मुझे ऐसे किसी संस्थान का दौरा करने का अवसर ही नहीं मिला था, रंगशाला, शिल्पशालाएँ, वेधशाला जिसमें विभिन्न प्रदेशों

से आए शिक्षार्थी प्रशिक्षण ले रहे थे जिसमें बहुत-सी लड़कियाँ भी थीं। फिर हम चलते-चलते संस्थान के पुस्तकालय में जा पहुँचे। हमने अभी पुस्तकालय में कदम रखा ही था कि एक सज्जन सैंकड़ों पुस्तकों से भरी अलमारियों में से दो-तीन पुस्तकें निकालकर मेरी ओर चले आ रहे थे। वह मेरी ही पुस्तकें उठाए हुए थे। मुझे, निश्चय ही बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ और पुस्तकों को देखकर लगता भी था कि कुछ पाठकों ने इन्हें पढ़ा भी है।

उसी पुस्तकालय में एक युवती छोटे से मंच पर अपने सामने कंप्यूटर रखे उस पर काम कर रही थी। वह भी गाँव की ही लड़की थी जो पढ़-लिखकर कंप्यूटर पर हिसाब-किताब का काम करने लगी थी। उस ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में उसे कंप्यूटर पर काम करते देखकर निश्चय ही बड़ा अच्छा लगा। संस्थान अपने कार्यकलाप में जहाँ अतीत से जुड़ता था और परंपरागत अनुभवों-प्रथाओं से लाभ उठाना चाहता था, वहाँ वर्तमान और भविष्य से भी जुड़ता था, अपनी दृष्टि में भविष्योन्मुखी था।

पुस्तकालय में से निकले ही थे कि और बड़ा सुखद् अनुभव हुआ। एक विकलांग युवती, बैसाखियों के सहारे, बरामदे की ओर चली आ रही थी। कोई ग्रामीण लड़की ही रही होगी, पर खिला-खिला चेहरा, साफ़-सुथरे कपड़े, चेहरे पर झलकता आत्मविश्वास, हलकी-सी मुस्कुराहट। मानो संस्थान में आए लोगों का स्वागत कर रही हो। उसने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। उसे देखकर मुझे लगा जैसे उसके चेहरे पर खिली आत्मविश्वास भरी मुस्कुराहट इसी संस्थान की देन है जिसने यहाँ के लोगों को अपने व्यक्तित्व का बोध कराया है। पुस्तकालय से निकलकर हम लोग अब एक सभागार में प्रवेश कर रहे थे। बड़ा-सा हॉल, कमरा, फ़र्श पर दरियाँ, छत पर से लटकते पंखे चल रहे थे, और सभागार संस्थान के सक्रिय कार्यकर्ताओं, ग्रामीण पुरुषों-स्त्रियों से भरा था।

मैं कुछ-कुछ अपने ही आग्रह पर यहाँ पहुँच गया था, संस्थान के कार्यकलाप का पहलू देखने के लिए। क्योंकि न तो मुझे विचाराधीन विषय की जानकारी थी, और यदि यह जानकारी होती भी तो भी मेरे पल्ले कुछ भी पड़ने वाला नहीं था, क्योंकि उनका विचार-विमर्श अपनी स्थानीय बोली में चलने वाला था। पर फिर भी मेरे लिए देखने-जानने को बहुत कुछ था।

सभागार में ग्रामीण स्त्रियाँ-पुरुष बैठे थे, स्त्रियाँ प्रथानुसार एक ओर, पुरुष दूसरी ओर। बातचीत बड़े औपचारिक ढंग से चल रही थी। एक बूढ़ी अम्मा, हाथ पसार-पसार कर अपना तर्क सुना रही थीं। जिस तरह हाथ पसार रही थी मुझे लगा बड़ी गर्मजोशी में बोल रही हैं, पर फिर स्वयं ही कभी-कभी अपने पोपले मुँह पर हाथ रखकर हँसने लगती थीं... मैं देश की जनतंत्रात्मक पद्धति की एक गर्वीली इकाई का कार्यकलाप देख रहा था। बहुत कुछ देखा था, जो सचमुच स्फूर्तिदायक था, प्रेरणाप्रद था। मुझे अपने कमरे की ओर ले जाते हुए संस्थान के प्रतिनिधि मुझे संस्थान की मूल अवधारणाओं के बारे में बता रहे थे। यहाँ काम करने वाले अधिकतर लोग गाँव के ही युवक-युवतियाँ थे जिन्होंने पाँचवीं कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक की तालीम पाई थी। फिर अभ्यासवश अपने पपोटों पर ऊँगली चलाते हुए बोले — ''यहाँ सभी को मान्यता मिलती है, परंतु यदि प्राथमिकता दी जाती है तो गरीब ग्रामीणों को, स्त्रियों को और निम्न जाति के लोगों को।''

यहाँ कोई बड़ा या छोटा नहीं है। यहाँ सभी सीखना चाहते हैं, सीखने के इच्छुक हैं। गांधी जी के कथनानुसार, गाँव का कोई भी मामूली पढ़ा-लिखा व्यक्ति कोई-न-कोई हुनर सीख सकता है। उसके लिए शहरी शिक्षा की डिग्रियाँ लेने की कोई ज़रूरत नहीं है। यहाँ पैसे के प्रलोभन के लिए कोई स्थान नहीं है। धन बटोरने की इच्छा से यहाँ कोई काम नहीं करता। नंगे पाँव चलने वाले इस संस्थान में हर प्रकार की पहलकदमी को प्रोत्साहित किया जाता है। यहाँ स्त्रियों को समानाधिकार प्राप्त हैं। यहाँ भी गांधी जी के कथनानुसार वे किसी से पीछे नहीं हैं, मामूली पढ़ाई कर चुकने पर भी स्त्रियाँ, बड़ी कुशलता से कंप्यूटर पर काम कर रही हैं, पानी के नल मरम्मत कर रही हैं, सौर-ऊर्जा के उपकरण लगा रही हैं, और पानी के तालों की व्यवस्था कर रही हैं। और सामान्यत: उनका काम पुरुषों की तुलना में इक्कीस ही है, बीस नहीं।

संस्थान में व्यक्ति को रचनात्मक तथा सकारात्मक विकास के लिए सुविधाएँ प्राप्त होंगी। संस्थान देश के संविधान के अनुरूप और अहिंसा से प्रेरित साधनों द्वारा सामाजिक न्याय को क्रियान्वित करेगा। संस्थान ऐसी टेक्नालॉजी को मान्यता नहीं देगा, जिससे लोगों की रोज़ी-रोटी पर बुरा असर पड़े।''

दूसरे दिन प्रात: अपने शहर लौटने से पहले, संस्थान के डायरेक्टर श्री बंकर राय से घड़ी भर के लिए मिलने का सु-अवसर मिला, पिछले तीस वर्ष से वे इस संस्थान का संचालन करते आ रहे थे, और उन्होंने इसे एक विरल, प्रतिष्ठित,

ख्याति-प्राप्त संस्था का रूप दिया था। कोई भी व्यक्ति जो गरीब ग्रामवासियों की क्षमताओं को इतनी लगन और निष्ठा के साथ निर्माण कार्यों में लगा सकता है, वह निश्चय ही श्रद्धा का पात्र है।

उन्हीं से मिलने पर पता चला कि उस संस्थान की, जिसे उन्होंने और उनके सहकर्मियों ने नंगे पाँव आगे बढ़ने वाले संस्थान की संज्ञा दे रखी थी, ख्याति अब दूर-दूर तक पहुँचने लगी है। कुछ ही समय पहले इस संस्थान को अंतर्राष्ट्रीय संस्था, आगा खाँ फ़ाउंडेशन द्वारा बहुत बड़े पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। दिल्ली की ओर हमारी जीप बढ़ने लगी है। तिलोनिया पीछे छूट चुका है। पर बार-बार मन में एक ही वाक्य उठता है कि तिलोनिया का भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल हो, देश में एक तिलोनिया नहीं, बीसियों, सैंकड़ों विलोनिया उठ खड़े हों — देश की गरीब जनता का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बढ़ाने वाले, देश को प्रगति के पथ पर ले जाने वाले।

शब्दार्थ-टिप्पणी

समसामयिक आजकल का **जरनैली** मुख्य सड़क **फर्शी** जमीन पर बैठने की व्यवस्था **पपोटे** पलकें **विमर्श** विवेचन **रंगशाला** नाट्यशाला

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) राजस्थान में क्यों बहुत गरमी होती है ?

(2) राजस्थान की सड़कों और वातावरण का वर्णन कीजिए ?

(3) जलसंग्रहण के लिए तिलोनिया के लोगों ने क्या किया था ?

(4) तिलोनिया के लोग कैसा बनना चाहते हैं ?

(5) सौर उर्जा का उपयोग तिलोनिया के लोग कहाँ-कहाँ करते थे ?

(6) तिलोनिया की शिक्षा व्यवस्था कैसी है ?

(7) पुतलियों का खेल कैसे सामाजिक भूमिका निभाता है ?

2. उत्तर लिखिए :

(1) तिलोनिया गाँव का वर्णन कीजिए।

(2) तिलोनिया के लोग कुदरती संसाधनों का उपयोग कैसे करते हैं ?

(3) संस्थान का उद्‌देश्य क्या था ?

(4) तिलोनिया के बेरोजगार युवकों को क्या काम दिया गया ?

(5) तिलोनिया गाँव को ऊँचाई पर पहुँचाने वाले संस्थान का परिचय दीजिए।

योग्यता-विस्तार

- कक्षा में चर्चा कीजिए कि आज के युग में वैज्ञानिक उपकरणों के अभाव में भी स्थानीय साधनों के द्वारा उन्नति की जा सकती है।

●

7 स्त्री-शिक्षा

नर्मद

(जन्म : सन् 1833 ई. निधन : सन् 1886 ई.)

गुजराती साहित्य में अर्वाचीन युग के अग्रिम रचनाकार नर्मद का जन्म सूरत में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका पूरा नाम नर्मदाशंकर लाभशंकर दवे था। गुजराती साहित्य में उन्हें कवि नर्मद के रूप में जाना जाता है। उन्होंने मुंबई में शिक्षा प्राप्त की थी। नौकरी छोड़ कलम के प्रति समर्पित हो उन्होंने समाज-सुधार और साहित्य को जीवन का मुख्य मंत्र बनाया।

प्रेम, प्रकृति, देश भक्ति, शौर्य और समाज सुधार नर्मद की कविता के मुख्य विषय हैं। नई शैली की कविता के सर्जक के रूप में उन्हें जाना जाता है। उनकी समग्र कविता 'नर्म कविता' नामक ग्रंथ में तथा गद्य रचनाएँ 'नर्म गद्य' के रूप में संकलित हैं। 'मारी हकीकत' उनकी आत्मकथा है। 'नर्मदकोश' गुजराती कोश साहित्य का पहला विशिष्ट ग्रंथ है। उन्होंने 'डांडियो' नामक समाज-सुधार संबंधी सामयिक प्रारंभ करके प्रत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रदान किया। व्याकरण, पिंगल तथा अनुवाद के क्षेत्र में भी पहल करने वाले नर्मद को गुजराती के अर्वाचीन साहित्य के 'नूतन प्रस्थानकार' के रूप में देखा जाता है।

समाज-सुधारवादी इस निबंध में नर्मद भारतीय समाज में स्त्री-संबंधी रूढ़िवादी और संकीर्ण मान्यताओं को दूर कर प्रगतिशील विचारों को अपनाने को कहते हैं। वे स्त्री-शिक्षा, स्वतंत्रता, समानाधिकार और स्व-निर्भरता को समाज के सर्वांगी विकास के लिए जरूरी बताते हैं। पुरुष की भाँति यदि स्त्री भी सुशिक्षित हो तो वह अपने पूरे परिवार, समाज और राष्ट्र के बहुमुखी विकास में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। शिक्षित-संस्कारी स्त्री के बिना संसार अधूरा है, अंधकारमय है। शिक्षित स्त्री ही अपनी संतान को आदर्श नागरिक बना सकती है, इसमें दो मत नहीं। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' के वर्तमान सूत्र के संदर्भ में नर्मद के विचार बहुत दूरगामी हैं और प्रासंगिक भी।

मनुष्य शब्द में पुरुष और स्त्री दोनों समाविष्ट हैं। आकार, स्वभाव, भावना और समझदारी में दोनों लगभग एक समान हैं। शादी के बाद परस्पर सहवास से, परस्पर प्रेम से, परस्पर विश्वास से तालीम पाकर पुरुष सुघड़ बनता है - वह एक अलग ही मनुष्य हो जाता है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि शादी से पूर्व पुरुष मनुष्य है। पुरुष के स्वभावगुण तथा स्त्री के स्वभावगुण दोनों मिलकर मनुष्य जाति के स्वभावगुण होते हैं। संसार में एक-दूसरे की मदद करने के लिए दोनों पैदा हुए हैं। समग्र रूप से पुरुष की अपेक्षा स्त्री 'मनुष्य' संज्ञा के लिए कुछ कम अधिकारिणी नहीं है। स्त्री को पुरुष का अर्धांग माना गया है, वह गलत नहीं है। खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, दु:ख दूर करने और सुख भुगतने के लिए दोनों के कुदरती अधिकार एकसमान हैं। कतिपय बाबतों में तो स्त्री की कोमलता और मोह में आसक्त होकर स्वयं पुरुष ने उसको विशेष अधिकार दिए हैं। गर्मी-ठण्डी में जाने का और कड़ी मेहनत का काम अपने पास रखा है और घर का काम इनको सौंपा है। स्त्रियों को संकट से बचाने के लिए पुरुषों ने कष्ट सहन किए हैं और प्राण भी गँवाए हैं। फिर भी कुछ विद्वानों ने उसको अधम माना है। वे कहते हैं कि दासी की तरह घर की बेगारी करने के लिए तथा पुरुष के सुख की खातिर स्त्री उत्पन्न हुई है। इस तरह अधम मानने का कारण यह है कि पुरुषों को अपने सांसारिक कार्यों के यश का अभिमान है। स्त्री द्वारा मिलने वाले सुखों का आनंद इन्होंने नहीं किया तथा कुछ मूर्ख एवम् कठोर स्त्रियों का व्यवहार देख-सुनकर समस्त स्त्री-जाति के लिए इन्होंने निकृष्ट विचार व्यक्त किया है।

क्या स्त्री-जाति में पढ़ने की बुद्धि नहीं है ? क्या स्त्री-जाति पुरुष की तरह सांसारिक काम करने के लिए अशक्तिमान है ? जिस स्वतंत्रता के कारण पुरुष यश प्राप्त करता है, वह स्वतंत्रता यदि स्त्री को मिलती तो क्या वह ऐसा यश प्राप्त न कर सकती ? इस मामले में यूरोप और अमरीका की स्त्रियों के जितने चाहिए उतने दृष्टांत हैं, तो क्या हमारे यहाँ नहीं हैं ? क्या ब्राह्मण-कन्या गार्गी ने राजा जनक की सभा में जाकर बड़े-बड़े ऋषियों से विवाद कर उनको पराजित नहीं किया ? क्या भामगी

ने न्यायशास्त्र सम्बन्धी ग्रंथ तैयार नहीं किया ? क्या डग जोषी की पुत्री भाढ़ली ज्योतिष में प्रवीण नहीं थी ? क्या सरस्वती ने शंकराचार्य के साथ रसशास्त्र में विवाद कर अपने स्वामी मंडन मिश्र को बचाया नहीं था ? क्या नेमि ने विधवा दशा के दु:ख के बारे में असरकारक नाटक नहीं रचा ? कुन्ती ने अपने धर्मराजा को सिंहासन पर आरूढ़ होते समय, युद्ध में जाते समय राजनीति और युद्धनीति के विषय में गहन सुंदर सीख नहीं दी थी ? क्या राजपूत स्त्रियाँ तलवार लेकर रणसंग्राम में नहीं गईं और उन्होंने यश नहीं पाया क्या ? क्या पार्वती, सीता, द्रौपदी, बिजली, रुक्मणी आदि स्त्रियों ने अपने-अपने सद्‌गुणों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की ? सर्वप्रथम स्त्रियों पर श्रम और ध्यान देकर उनको तालीम दी जाय तथा उनको स्वतंत्रता दी जाय और बाद में देखा जाय कि वे पुरुष की तरह यश प्राप्त कर सकती हैं या नहीं। जो प्रेम के कारण अपनी संतान को उदर में धारण कर दु:ख सहती हैं, प्रेम के कारण उनका पालनपोषण करती हैं और प्रेम के कारण रखती हैं, संसार के कामकाज में पराशर्म देती हैं इसलिए दासी मानना यह क्या न्याय और कुलीनता है ? वाराहि संहिता के भाष्य में लिखा है कि ब्रह्मा ने सावित्री को उपवीत दिया था और अभी रूढ़ि भी है कि विवाह हुआ हो उस लड़के को ससुराल से जनेऊ दी जाती है। स्त्री को साथ रखे बिना अग्निहोत्रादिक कर्म नहीं होते। जिसके द्वारा ब्रह्मा और उनके वंशजों ने संस्कार प्राप्त किये हैं उस स्त्री को अब अधम कैसे माना जाय ? सही विचार करने पर लगता है कि स्त्री-जाति का तिरस्कार करनेवाले पुरुष स्वयं ही तिरस्कारपात्र होते हैं। कुछ लोग बुरे इसलिए सभी बुरे ऐसा विचार विद्वान लोग करते हैं, उसमें वे अपनी ईर्ष्या, पक्षपात और विद्वता की कमी बताते हैं। पुरुष ने स्त्री की मोहिनी पर प्रसन्न होकर उसे ज्यादा मेहनत न करनी पड़े इसलिए प्रथम उसे घर का काम सौंपा और स्त्री अपने प्यार के उत्साह में उसके विश्वास पर अधीन हो गई, फिर भी स्त्री आजकल दासी समझी जाती है, यह कैसा आश्चर्यकारक है !

कुछ ब्रह्मचारी साधु, विद्वान और निराश शृंगारी कवियों ने भी स्त्री का तिरस्कार किया है। इन्होंने उसको नरक का कुआँ, नागिनी, शेरनी, विषवेल, दु:ख का दरिया, पाप की पुतली, जड़, निर्दय, लोभी, गंदी छल करनेवाली, साहसिक, नीच, हठी, बेवफा इत्यादि विशेषण दिए हैं। जहाँ स्त्रियों की पढ़ाई नहीं हुई है, जहाँ अच्छी संगति नहीं मिली, जहाँ इनका बाल विवाह हुआ है, जहाँ वे वैधव्य के कारागार में कैद हैं, और जहाँ उनको स्वतंत्रता नहीं है, वहाँ वे अपने अनपढ़ दुराचारी पुरुषों के सहवास में दुराचारी कैसे न हों ? लेकिन अफसोस की बात है कि उनका स्वाभाविक दोष न होने पर भी साधुओं ने अपने को सांसारिक सुख न मिलने की कुढ़न उन पर निकाली है ! स्त्रियों को तिरस्कार वचन लिखते समय क्या मुक्तानंद सरीखे विद्वानों को यह विचार नहीं आया होगा कि हम भी स्त्री द्वारा उत्पन्न हुए हैं। साधुओं की वाणी में कुढ़न है अथवा अपना पंथ चलाने के लिए पक्षपात है, अत: वह गलत है। सुज्ञ और अनुभवी पुरुषों ने स्त्री का जीवन, प्रमुख, अंत तक का जीवनसाथी, परम मित्र, प्राणप्यारी, अर्द्धांगिनी, प्रेमदा, रमणी, रत्न, शक्तिस्वरूप आदि शब्दों से जो वर्णन किया है, वही सही है।

ज्ञानशक्ति के कारण हम अन्य प्राणियों से ऊँचे हैं। शिक्षा द्वारा ज्ञानशक्ति प्राप्त होती है। मनुष्य में स्त्री-पुरुष दोनों का समावेश है। स्त्रियों के अधिकतर अधिकार पुरुषों के बराबर हैं। पुरुष की तरह स्त्री भी शिक्षा द्वारा ज्ञानशक्ति बढ़ाती है, वैसे हमारी स्त्रियों को भी अपना अधिकार मानकर शिक्षा द्वारा अपनी ज्ञानशक्ति बढ़ानी चाहिए और वे ऐसा कर सकें इसमें हमारी ओर से इच्छा, सहाय और प्रोत्साहन होना चाहिए। इसमें फायदा फिर हम पुरुषों को ही है। शिक्षित स्त्री सहायरूप होकर हमारी शक्ति में वृद्धि करती है। शिक्षित स्त्री परममित्र के रूप में सुख-दु:ख की बातें करने का आनंद बढ़ाती है और दु:ख दूर करती है। पढ़ीलिखी स्त्री प्रिया के रूप में रसपूर्ण सुख अधिकाधिक दिया करती है। जहाँ राजा और मंत्री दोनों शिक्षित और संस्कारी हों, वहाँ राज्य की उन्नति के बारे में कहना ही क्या ? शिक्षित पुरुष की अनपढ़ स्त्री के साथ, रसिक चतुर पुरुष की शठ मूढ़ के साथ, उद्यमी की आलसी के साथ, विवेकी की उद्धत के साथ, सदाचारी की दुराचारी के साथ, संस्कारी की असंस्कारी के साथ कदापि पटती नहीं है। जहाँ शिक्षा द्वारा समानता शोभायमान है, वहाँ ही स्त्री-पुरुष के चित्त एकदूसरे के साथ मेल खाते हैं।

कुछ मिथ्या लोग कहते हैं कि पुरुषजाति से स्त्रीजाति का दर्जा नीचा है और वह उसकी दासी है। कुछ लोग मिथ्या कहते हैं कि उसमें उच्च ज्ञान प्राप्त करने का सामर्थ्य नहीं है। कुछ मिथ्या कहते हैं कि जब वे पढ़ाई में समय व्यतीत करेंगी तब वे अपना घर-काम कब करेंगी और क्या वे मर्द का काम करेंगी ? और कुछ लोग मिथ्या कहते हैं कि पढ़लिखकर वे बिगड़ जायेंगी, स्वतंत्रता का उत्साह बढ़ने पर वे मर्यादाहीन हो जायेंगी, बुरी किताबें पढ़कर वे बिगड़ जायेंगी, बुरा पढ़कर वे आसानी

से कुकर्म करेंगी। इस संदेह का निवारण बाद के लेख में किया है फिर भी विशेषरूप से यहाँ कहता हूँ। शिक्षा तो दुर्गुणों को निकालने वाली है। शिक्षा से यदि बिगाड़ होता हो तो उसे पुरुषों को भी नहीं लेना चाहिए। कोई कहेगा कि शिक्षा में दोष नहीं है स्त्री-जाति के स्वभाव में दोष है, जिससे उस पर शिक्षा का असर नहीं होता है। स्वभाव भी शिक्षा की संगति से अच्छा होता है, अरे! इतना अच्छा होता है कि बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के स्वभाव में जमीन-आसमान का अंतर हो जाता है! यदि जन्म से ही उनका स्वभाव बुरा है तो भी शिक्षा तथा सद्संगति द्वारा उसमें सुधार संभवित है। मैं तो कहता हूँ कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री का मन अधिक कोमल है, इसलिए बाल्यवय से उस पर शिक्षा और नीति की छाप पड़ेगी तो वह कदापि दूर नहीं होगी। उपरांत स्त्री का स्वभाव यदि जन्म से ही बुरा और सुधर न सके ऐसा है तो जिन स्त्रियों ने अपने विद्या-सद्गुण द्वारा बड़ा नाम कमाया है, उनके बारे में क्या कहेंगे? अभी भी हम देख सकते हैं कि स्त्रियाँ पढ़ सकती हैं। यह कहना कि पढ़ना-लिखना सीखकर दुराचार करेंगी बिलकुल निरर्थक है। सिर्फ लिखना, पढ़ना यह शिक्षा नहीं है, लेकिन उसके साधन हैं, इससे ज्ञान जल्द और अच्छा प्राप्त होता है तथा दूसरों को दिया जा सकता है। अच्छा मैं पूछता हूँ, जिनको लिखना नहीं आता ऐसी स्त्रियाँ क्या कुकर्म नहीं करती हैं? कुकर्म करना, इसका लिखने के साथ कुछ भी संबंध नहीं है। यही कहना सही है कि नीति के उपदेश की कमी से तथा बुरी संगति से वे कुकर्म करती हैं। जो स्त्री नीति की शिक्षा प्राप्त करेगी, वह बुरे रास्ते पर चलेगी ही नहीं। सिर्फ पढ़ने-लिखने पर काले कर्म करनेवाली स्त्री शिक्षाप्राप्त स्त्री नहीं मानी जायेगी। तथापि कोई ऐसी स्त्री निकल आयी तो उसके आधार पर यह कहना कि सभी स्त्रियाँ बुरी हैं, यह गैरइन्साफ़ है। शिक्षाप्राप्त स्त्री अपने प्रीतम को अंतःकरणपूर्वक प्रेम करेगी और सदा अपना उद्योग करेगी, इस कारण तथा अपने कार्यों पर नीति का अंकुश रखेगी, इस कारण बुराई की ओर उसका मन आकर्षित ही नहीं होगा। स्त्रियों को आवश्यक मानकर पढ़ाने से पुरुष के काम करना, यह भी नहीं हैं, लेकिन अगर जरूरत पड़ी अथवा अनुकूलता हो तो वह कर सकती है, मगर केवल इसलिए ही उसको पढ़ाया जाय, ऐसा नहीं है - इनको इसलिए पढ़ाना है कि वे ज्ञान प्राप्त करें, वे अपना स्त्री-जाति का धर्म-अच्छी तरह घर संभाले, बच्चों को शिक्षा दे।

स्त्री-शिक्षा से होनेवाले लाभों में बड़ा लाभ तो यह है कि स्त्री अपने पुरुष से अंतःकरणपूर्वक प्रेम करती है, और जहाँ प्रेम है वहाँ दोनों अपना सुख बढ़े, अपनी इज्जत बढ़े और अपनी संतानों की भलाई हो ऐसा करने में उत्साहपूर्वक उद्योग क्यों नहीं करेंगे? शिक्षाप्राप्त स्त्री, अपने प्रीतम की लाड़ली प्रियतमा, ध्यान रखनेवाली, सदा वफादार दोस्त, सलाह देने में मंत्री और काम करने में सेविका बनकर रहती है। अनपढ़ स्त्रियाँ लोकलज्जा के कारण बिना मन सेविका के रूप में घर चलाती हैं परंतु शिक्षित स्त्री उत्साहपूर्वक और अपना कर्तव्य समझकर चलाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षित स्त्री का घर अधिक अच्छे ढंग से ही चलना चाहिए। शिक्षित स्त्री सुख में आनंद और दुःख में आश्वासन देती है। अपनी प्यारी शिक्षित स्त्री के समान उसके लिए दूसरा कौन है, जो पुरुष के उद्धत आवेश को नरम करती है और दुःखी पुरुष के आँसू पोंछती है? संकट के समय में सगे-सम्बन्धी, मित्र, स्वजन सभी साथ छोड़ देते हैं - सिर्फ स्त्री ही उसकी होकर रहती है। इस समय जो हो रहा है वह केवल लोकलज्जा से ही, लेकिन अब जो होगा वह निजी उत्साह से और कर्तव्य समझकर होगा। पढ़ लिखकर, युवा होकर शादी करनेवाली स्त्री अपने पति से इस प्रकार कहेगी कि आज से मैं तुम्हारे सुख-दुःख की साझीदार हूँ। तुम्हारी मरजी के विरुद्ध नहीं चलूंगी, आप मेरे प्रिय पति, सच्चे मित्र और कद्रदान राजा हो और मैं आपके प्रेम में गद्गदित स्त्री, अन्त तक की साथी और वचनबद्ध वफादार सेविका हूँ। मेरा तन-मन-धन यह सर्वस्व तुम्हारा है। शिक्षाप्राप्त स्त्री-रत्न अपना तेज कदापि खोती नहीं है — जैसे-जैसे उसका उपयोग होता है वैसे-वैसे वह अधिक प्रकाश देता है। ''दुनिया का अंत अपना घर और घर का अंत अपनी स्त्री'' यह कहना गलत नहीं है। जिस तरह स्त्री के बिना संसार सूना है, वैसे शिक्षारहित स्त्री के बिना यह संसार भयानक जंगल है, जिसमें शेर-बाघ रहते हैं, तथा शिक्षित स्त्री का संसार एक रमणीय उद्यान है।

घर चलाना, घर के सदस्यों को सुखी करना, और संतानों को इस तरह तैयार करना कि बड़े होकर अपने समय में वे अच्छे माता-पिता बन पायें ये स्त्रियों के धर्म-कर्म हैं, — लेकिन ज्ञान के बिना वे क्या कर सकती हैं? आजकल हम देखते हैं कि रसोई सम्बन्धी कामकाज में स्त्री व्यस्त होती है और निंदा करने में तथा सुंदर दिखने में एवं शादी-मरण सम्बन्धी रस्म-रिवाजों में बड़प्पन दिखाने में स्त्रियाँ सुख मान लेती हैं और अपना अमूल्य समय निरर्थक व्यय करती हैं। हमारा कर्म क्या है, कौन-से उच्च उद्देश्य के प्रति हमारा लक्ष्य होना चाहिए, उच्च प्रकार का सुख क्या है आदि विषयों के बारे में स्त्रियों को कुछ भी

मालूम नहीं है, - सचमुच इन बेचारियों की दशा दयाजनक है। गुलामगीरी की दयाजनक दशा से बाहर निकलकर, धर्मशास्त्र तथा झूठे शास्त्रों की कुछ शिक्षा के जो दु:ख-दायक घुंघरू उसने धारण किये हैं, उसे वह तोड़ सके, स्वतंत्र बुद्धि विकास तथा नीति शिक्षा की प्रवृत्ति में निमग्न होकर उसमें आगे बढ़ सके, स्त्री-जाति के अपने अधिकार, सुख के लिए सोचने लगे और अपनी संतानें भविष्य में बड़े-बड़े कार्य करें, यश प्राप्त करें तथा सुख भोग सकें इस वास्ते उनको तालीम देने लगे, ऐसे दिन देखने की आशा रखना ही खुशी उत्पन्न करता है, तो फिर उस दिन को प्रत्यक्ष देखना-उसे कितना हृदय शीतल करनेवाला और सुखप्रद समझा जाय।

जब तक स्त्रियों के प्रति नफरत दूर नहीं होगी, जब तक हमारे यहाँ प्राचीनकाल में स्त्रियों के जो मान-सम्मान थे और वर्तमान में विकसित देशों में है उसी तरह हमारी स्त्रियाँ पुरुष द्वारा सम्मान प्राप्त नहीं करेगी तब तक बेचारियाँ वे तथा हम संसार-सुख की ऊँची मौज नहीं पा सकेंगे। सुबह होते ही जो युगल घरकाम के लिए झगड़ा करता है, इससे ज्यादा दरिद्रता और क्या है ? शिक्षित युगल के लिए उद्यम ही उनकी सच्ची दौलत है। अगर द्रव्य संबंधी इनकी दशा अच्छी नहीं है तो भी परस्पर प्रेम और प्रत्येक का उद्यम, यही उनके सही सुख का उत्तम साधन हो जाता है। जब कि बिना स्त्री के घर, घर नहीं है तथा स्त्री से सब सुख मिलते हैं, तो फिर उसको शिक्षा क्यों न दी जाय ? जिस शिक्षा के द्वारा उसके सद्‌गुण पुष्ट होते हैं तथा सदाचरण दृढ़ होता है, जिस शिक्षा के द्वारा वह इधर के और उधर के उच्च प्रकार के सुख भुगतती है वह शिक्षा अभागिनी अबला को सुहागिन सबला बनाये, ऐसा समय ईश्वर की कृपा से और हमारे परिश्रम तथा प्रोत्साहन से शीघ्र ही आ जाय।

-अस्तु।

शब्दार्थ-टिप्पणी

समाविष्ट समाया हुआ, एकाग्रचित्त **आसक्त** मोहित **कतिपय** कुछ **कुदरती** प्राकृतिक **अभिमान** गर्व **निकृष्ट** नीच **दृष्टान्त** उदाहरण **पराजित** हार **प्रवीण** निपुण **उपवीत** जनेऊ, यज्ञोपवीत **उद्धत** तत्पर तैयार

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) मनुष्य जाति के स्वभावगुण से आप क्या समझते हैं ?

(2) नर्मद के अनुसार स्त्री-पुरुष के कौन-से अधिकार एक समान हैं ?

(3) कुन्ती ने धर्मराज को कब और क्या सीख दी ?

(4) कौन-से कर्म स्त्री के बिना अपूर्ण हैं ?

(5) सुज्ञ-पुरुषों ने नारी को किस रूप में स्वीकार किया है ?

(6) स्त्री-पुरुष के चित्त एक-दूसरे से कैसे मेल खाते हैं ?

(7) लेखक के अनुसार स्त्री जाति का धर्म क्या है ?

2. उत्तर लिखिए :

(1) नर्मद स्त्रियों के प्रति किस प्रोत्साहन की बात करते हैं ?

(2) नर्मद के अनुसार स्त्री-शिक्षा से क्या लाभ है ?

(3) स्त्री–शिक्षा परिवार के लिए किस प्रकार लाभ–प्रद है ?

(4) ''फायदा हम पुरुषों को ही है'' नर्मद ऐसा क्यों कहते हैं ?

(5) ''स्त्री–जाति का तिरस्कार करने वाले स्वयं ही तिरस्कार के पात्र होते हैं'' स्पष्ट कीजिए।

3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

(1) ''सिर्फ लिखना–पढ़ना यह शिक्षा नहीं है, लेकिन उसके साधन हैं।''

(2) ''स्त्री के बिना सूना संसार है, शिक्षा रहित स्त्री के बिना संसार भयानक जंगल है।''

4. सामासिक पदों का विग्रह करके समास पहचानिए :

सुख–दुख, सद्‌गुण, ज्ञानशक्ति, शिक्षारहित

5. संधि विच्छेद कीजिए :

बाल्यावस्था, संसार, निरर्थक, तथापि

योग्यता-विस्तार

- ''बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ'' – पर कक्षा में चर्चा कीजिए।
- ''आज की नारी पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।'' इस विषय से सम्बन्धित अन्य साहित्य ढूँढ़कर पढ़िए।

•

8 महाशूद्र

मोहनदास नैमिशराय

(जन्म : सन् 1949 ई.)

दलित रचनाकार मोहनदास नैमिशराय का जन्म उत्तरप्रदेश के मेरठ में हुआ था। उन्होंने एम.ए., बी. एड्. तक शिक्षा प्राप्त की। दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में से वे एक हैं। दलित परिवार में जन्म लेकर जिस पीड़ा और संत्रास को उन्होंने भोगा, उसका यथार्थ चित्रण उनकी रचनाओं में बड़ी बेबाकी से हुआ है।

'अपने-अपने पिंजड़े' उनकी बहुचर्चित आत्मकथा है। 'मुक्तिपर्व, 'वीरांगना झलकारी बाई' उनके उपन्यासों के नाम हैं। 'अदालत नामा' उनकी नाट्य रचना है। 'सफदर एक बयान' कविता संग्रह है। उनके कहानी संग्रह का नाम है 'आवाजें'। 'बयान' नामक मासिक पत्रिका का संपादन करते हैं। 'भारतरत्न बाबा साहब आंबेडकर' (चित्र पुस्तिका) तथा 'बाबा साहब ने कहा था' उनके विचार लेखों का संग्रह है।

'महाशूद्र' दलित चेतना से संबद्ध कहानी है जिसमें इस कटु सत्य को उजागर किया गया है कि जातिवाद के मूल हमारे समाज में बहुत गहरे हैं। दलित तो दलित है ही, ब्राह्मण भी यदि श्मशान में शवों का क्रियाकर्म करता है तो उसे महादलित या महाशूद्र कहकर अपमानित किया जाता है। इस कहानी में ऐसे ही एक ब्राह्मण की यातना भरी कथा कही गई है।

जिधर देखो उधर ही अँधेरा था। हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता था। एक छोटी-सी लालटेन कोठरी की चौखट पर लगे सांकल की कुंडी पर टंगी थी। वहीं से थोड़ा-बहुत उजाला आसपास बिखरा हुआ था। मरघट से एक-एक कोस दूर तक कोई आबादी नहीं थी। दिन में ही वहाँ सन्नाटा तैरने लगता था। रात के अंधेरे में तो वातावरण और भी अधिक डरावना हो जाता था। इसी मरघट में नंदू डोम और आचार्य जी रहते थे। आचार्य जी रात के आठ बजे तक यहाँ मौजूद होते थे जबकि नंदू रात को भी यहीं सोता था। नंदू का परिवार शहर की भंगी बस्ती में रहता था। सप्ताह में दो-तीन बार वह वहाँ हो आता था पर रात में वह इसी मरघट मे अकेला सोता था। आचार्य जी प्रतिदिन अपने परिवार में चले जाते थे। उनके दो बेटे थे और एक बेटी। दोनों बेटे कॉलेज में पढ़ते थे। बेटी का ब्याह हुए तीन साल हो गए थे। पारसाल ही वह विधवा हो गई थी। तभी से वह घर में बैठी थी। आचार्य जी अपनी बेटी को जब कभी उदास देखते, उनका कलेजा फटने लगता था। कई बार मन हुआ कि विधवा बेटी का दूसरा ब्याह कर देना चाहिए पर समाज की मान्यताओं के आगे वे नतमस्तक हो जाते थे। घर में चौथे सदस्य के रूप में आचार्य जी की पत्नी थी जो समय से पहले ही बूढ़ी हो गई थी।

यूँ आचार्य जी की उम्र पचास के लगभग थी और उनकी पत्नी भागवंती की बयालिस। पर वे पति से अधिक उम्र की लगती थीं। बालों में सफेदी बिछ गई थी और शरीर में सलवटें। हाथ-पाँव की नसों के उभार स्पष्ट होने लगे थे। रही-सही कमी पूरी की, जवान बेटी के वैधव्य भरे जीवन ने।

इस समय मरघट में केवल दो ही आदमी थे — नंदू डोम और आचार्य जी। आचार्य यानी इस मरघट में आए मुर्दों का अंतिम संस्कार करने वाला ब्राह्मण।

मार्च का महीना था। हवा में ठंडक थी। रात के आठ बजने वाले ही थे। नंदू बीड़ी-पर-बीड़ी फूँके जा रहा था जबकि आचार्य जी कभी-कभी तम्बाकू की फंकी मुँह में डाल लेते थे। वे घर लौटने की तैयारी में थे। तभी 'राम-नाम सत...' की आवाज नजदीक आती उनके कानों में पड़ी।

''नंदू, देख तो, अब कौन आ मरा... ?'' उनके स्वर में उखड़ापन था। मुँह में लगी बीड़ी को फर्श पर मसलते हुए नंदू स्वयं बड़बड़ाया, ''हियाँ तो कोई-न-कोई मरकर ही आता है। पर टैम भी तो देखना चाहिए कि नई। कित्ती रात हो गई है।'' भुनभुनाते हुए वह उठ खड़ा हुआ।

''आ जाने दो आचार्य जी पैले। ससुरे जाँगे कहाँ... ?'' वह वहीं रुक गया। 'राम-नाम सत है... सत बोलो गत है...' की मिली-जुली आवाजें अब और भी नजदीक से आने लगी थीं। नंदू की अभ्यस्त आँखों ने देखा, सड़क की ओर से आठ-दस लोग अर्थी को उठाए तेज रफ्तार से मरघट की तरफ ही चले आ रहे थे।

''अब दो घंटे और यहाँ रुकना पड़ेगा।'' नजदीक ही जमीन पर थूकते हुए आचार्य जी नाराजगी भरे स्वर में बोले।

''किया भी क्या जा सकता है आचार्य जी, काम भी तो ऐसा ही है म्हारा।''

थोड़ी देर में ही अर्थी उठाए आदमी पास आ गए। आचार्य जी ने कुंडी पर टंगी लालटेन की रोशनी में देखा। गिनती के कुल आठ आदमी थे। एक के हाथ में हंडिया थी, दूसरा लालटेन उठाए था। चार आदमियों के कंधों पर अभी भी अर्थी रखी थी। शेष दो आदमियों के हाथों में लाठियाँ थीं। इससे पूर्व कि आचार्य जी कुछ कहते, नंदू ने नाराज होते हुए कहा, ''मुरदा फूँकने का कोई टैम होता है कि नई...।''

''आचार्य जी, अब क्या कहें, बस देरी हो गई...।'' लालटेन उठाए हुए आदमी ने झिझकते हुए कहा।

''वह तो ठीक है, पर...।'' आचार्य जी ने उन सभी के चेहरे पढ़े, मैले-कुचैले से कपड़े पहने उनके शरीर को देखा। वे सभी मजदूर थे। पास ही की झुग्गियों से आए थे।

''पर लकड़ी कहाँ है... ?'' नंदू बोला।

''लकड़ी तो नहीं है...।'' हंडिया उठाये आदमी ने डरते-डरते कहा।

''लकड़ी नहीं है तो मुरदा कैसे जलेगा... ?'' आचार्य जी रोष भरे स्वर में बोले। अब तक चार लोगों ने अर्थी चबूतरे पर रख दी थी। कुछ पल मौन रहा। अजीब-सी चुप्पी मरघट में व्याप्त हो गई।

''अरे कुछ गड़बड़ तो नई है ?'' नंदू के सवाल ने मरघट पर छाई चुप्पी को तोड़ा।

''नई भइया, गड़बड़ी किस बात की ?'' अब तक जिन चार लोगों ने अर्थी को कंधा दिया हुआ था उनमें से एक बोला।

''फिर लकड़ी कहाँ है... ?'' नंदू ने फिर से कड़कती आवाज में पूछा।

''सरकार, यह लावारिस था। आज दिन में मर गया बेचारा। तभी से इंतजाम करने में लगे थे।''

''क्या इंतजाम किया तुम लोगों ने ?'' आचार्य जी ने पूछा।

''आचार्य जी, कुछ चंदा किया है बस्ती में।'' दूसरा व्यक्ति बोला।

''पर कित्ता चंदा हो गया ?'' नंदू ने फिर कड़कती आवाज में पूछा।

''यही, सौ-सवा सौ...।''

''क्या ?''

नंदू के साथ आचार्य जी के मुँह से भी अनायास निकल पड़ा।

''पर इत्ते से रुपयों में क्या होगा ! इसमें तो एक कुंटल लकड़ी का ही जोगाड़ होगा और मुरदा जलाने के लिए तीन कुंटल लकड़ी चइये।''

''हमसे तो इतना ही बना। बिचारे की दुरगति न हो इसलिए। नहीं तो कुत्ते-बिल्ली इधर-उधर लाश खींचते-फिरते।''

''लेकिन इतनी कम लकड़ियों में कैसे होगा। मुरदे को तो पूरा ही जलाना पड़ता है ना।'' आचार्य जी पुनः बोले।

''वो तो ठीक है आचार्य जी... आप ही कुछ करिये।'' अब दो-तीन लोग एक साथ ही बोले।

''ठीक है-ठीक है, करते हैं कुछ ! मुरदे का अंतिम संस्कार नहीं करेंगे तो कल तुम ही लोग पता नहीं कहाँ-कहाँ जाकर बदनाम करोगे।''

इस बीच एक आदमी ने जेब से मुड़े-तुड़े नोट निकालकर आचार्य जी की हथेली पर रख दिए। उन्होंने गिना। कुल एक सौ पच्चीस रुपये थे। मुरदे को दो नंबर घाट पर ले चलने के लिए कह नंदू को उसी कोठरी की ओर ले आए। कोठरी में ऐसे

ही समय के लिए कुछ लकड़ियाँ रखी हुई थीं, जिनमें से कुछ अधजली भी थी। आचार्य जी अंधेरे में रास्ता बनाते हुए घाट की ओर चले गए। नंदू ने कोठरी में से दो मन लकड़ी अंदाज से निकाली।

कुछ देर में मृत-शरीर पर लकड़ियाँ रख दी गईं। आचार्य जी मंत्र पढ़ने लगे — ''हरि ओम पवित्र वाह सर्वस्वाहा...।'' उनमें से एक आदमी ने मुखाग्नि दी। घी, चदंन तो था नहीं। मुरदे पर कफन के सिवा कोई कपड़ा भी नहीं था। सूखी लकड़ी होने के कारण आग की लपटें निकलने लगीं। शरीर जलने से अजीब-सी गंध वातावरण में फैलने लगी।

थोड़ी देर बार अर्थी के साथ आए आठों आदमी चले गये। मुरदे के भीतर से बदबू का भभका निकलने लगा था। वे दोनों थोड़ा हटकर बैठ गए लेकिन बदबू तो सारे वातावरण में ही फैलने लगी थी। यूँ जलते मुरदे के पास तीव्र बदबू के कारण एक पल भी बैठना मुश्किल था। पर उन्हें तो अभी कम-से-कम दो घंटे और वहाँ बैठना था, जब तक कपालक्रिया पूरी नहीं हो जाती। इस बीच नंदू डंडे से लकड़ियों को ठीक करता रहा। लकड़ियों के चटकने की आवाज होने लगी।

''आचार्य जी, बदबू के मारे तो बुरा हाल है। साँस लेना भी मुश्किल हो गया है।''

''हाँ नंदू, पर हम कर भी क्या सकते हैं?''

अब चिता को पूरी तरह से आग ने अपने घेरे में ले लिया था। आग ने जोर पकड़ा तो आसपास की लकड़ियाँ भी जलने लगीं। आग से उत्पन्न उजाले का दायरा भी बढ़ा। अंधेरे को चीरते हुए उजाला जहाँ-तहाँ बिखरने लगा। मरघट में सभी कुछ शांत था, केवल एक लावारिस लाश उसी खामोश वातावरण में अकेले जले जा रही थी।

काफी देर बाद मुरदे का कपाल फूटा। शांत परिवेश में एक आवाज गूँजी। आचार्य जी घर जाने को तैयार हो गए।

जिस बस्ती में आचार्य जी रहते थे उसमें कुछ लोग तो यही मानते हैं कि यह व्यक्ति ब्राह्मण समाज पर कलंक है। वह मुरदे के कफन तक को नहीं छोड़ता। सब कुछ मुरदे के शरीर से उताकर बेच देता है। यहाँ तक कि मृतक की इस्तेमाल की गई वस्तुएँ भी। औरतों के बीच दूसरी तरह से चर्चा होती। वहाँ उनके कर्मो के फल से उनकी विधवा बेटी की बात को जोड़ा जाता। आचार्य के बराबर वाले मकान में भड़भूंजन रहती थी। बस्ती के कोने पर दोतल्ला पक्के मकान से रामलुभाए की घरवाली रोज सुबह-सुबह भुने हुए गर्म चने लेने आती। आते ही पहला सवाल वह कर बैठती, ''कल कितने कफन बेचे उस बामन ने?'' भड़भूंजन जैसा देखती-सुनती, वैसा ही बता देती। फिर वही बात समूची बस्ती में खबर बनकर फैल जाती। लोग अपने-अपने हिसाब से उस खबर को सुनते तथा दूसरों को नमक-मिर्च लगाकर सुनाते।

आज भी सुबह भड़भूंजन ने भाड़ में चने भूनने शुरू किए तो रामलुभाई सबसे पहले चने लेने आ धमकी। आसपास कोई न था। उसने धीरे-धीरे से इधर-उधर देखकर पूछा, ''अरी बता न, कल कितने कफन बेचे उस बामन ने।'' उत्तर में जसवंती ने ''कोई नहीं'' कहकर गर्म चने उसके पल्लू में डाल दिए।

''पर कोई कपड़ा-वपड़ा तो बेचा होगा।'' चने सूँघते हुए रामलुभाई ने उसे कुरेदा।

''कोई मुरदा ही नहीं आया तो...।''

''हाँ, जसवंती ये तो ठीक है, पर यह चंडाल तो चाहता ही होगा कि रोज-रोज खूब सारे मुरदे मरघट में आयें और उसका घर भरे।''

''हाँ, तुम्हारी बात तो ठीक है।''

''छि: छि: यह भी कोई काम है।'' चने के पैसे देकर वह नाक-मुँह सिकोड़ते बोली।

तभी आचार्य जी का छोटा लड़का चने लेने आ गया। रामलुभाई उसे देख, 'राम-राम' करते हुए चली गई।

आचार्य जी रात में मरघट से देरी से आते तो बैठक में ही सो जाते थे। सोने से पूर्व वे नहाना नहीं भूलते थे। सर्दी हो या गर्मी, स्नान करके ही दूसरा कोई कार्य करते थे। यहाँ तक कि आँगन में भी नहाने के बाद ही जाते थे। सोने के थोड़ा पहले मंत्रजाप भी अच्छी तरह किया करते थे। सुबह धूप चढ़े किनारी बाजार के लाला ने बाहर से कुंडा खटखटाया तो उनकी आँखें खुलीं। किनारी बाजार में लाला की कपड़े की दुकान थी। वह तीसरे-चौथे कपड़े खरीदने आता था। आचार्य जी मुरदों पर पड़ी

चादरें बेच दिया करते थे। किनारी बाजार में वही चादरें धड़ल्ले से बिकती थीं। यूँ एक-दो चादरें वे गरीबों को दान-पुण्य भी कर देते थे। चारपाई से उठकर उन्होंने कुंडा खोला। सामने लाला को देखकर अभिवादन किया। बैठक में पड़ी एक कुर्सी पर बैठते हुए लाला ने सबसे पहले वही सवाल किया —

''कुछ चादरें आयीं क्या ?''

''कहाँ, एक भी नहीं मिली।'' उदास से स्वर में आचार्य जी बोले।

''क्यों ?...''

'दो दिन से कोई मुरदा ही नहीं आया। तीसरे दिन आया भी तो वह भी लावारिस। बड़ी मुश्किल से लकड़ी के ही पैसे जुटा पाए थे अर्थी को कंधा देने वाले।' आचार्य जी का स्वर अफसोस भरा था।

''हे भगवान, जैसी प्रभु की इच्छा...'' कहते हुए लाला उठ खड़ा हुआ। लाला को चाय तक पूछने की हिम्मत उनमें नहीं हुई। जब-जब किनारा बाजार से लाला चादरें खरीदने घर पर आता तो परिवार में सभी को बुरा लगता था। कई बार उनके दोनों बेटों ने टोका-टाकी भी की। घर में इस बात को लेकर कहा-सुनी भी हुई। उनके बड़े बेटे ने चीख-चीखकर एक दिन कहा भी-''पिताजी, अब और नहीं सहा जाता। सारी दुनिया हम पर थू-थू करती है। हमें मुरदे की चमड़ी खींचने वाले से लेकर कफन-खसोटू तक कहती है। वे कहते हैं कि हमारे घर का गुजारा ही तब तक चलता है जब कोई मरता है। किसी के घर में अँधेरा होने पर ही हमारे घर में उजाला होता है।''

''रात में आचार्य बहुत देर से लौटे?'' भागवंती से रहा न गया। उसने बात चलाई।

''हाँ...!''

''कुछ पैसा-वैसा मिला।'' उसने पूछा

''कहाँ से मिलता ? मुरदा ही लावारिस था।''

''कुछ भी नहीं मिला?''

''अब मैं मुरदे की खाल खींचकर तो घर ले आ नहीं सकता।''
उनके स्वर में खीझ उभर आई थी।

''कैसी बात कर रहे हैं आप, अब यह भी करना रह गया है क्या ? वह धीरे-धीरे तथा मुलायम स्वर में बोली।''

''इस जनम में पता नहीं क्या-क्या करना पड़ेगा ?'' अफसोस जाहिर करते से वे बोले।

''यह सब करते हैं फिर भी गुजारा नहीं होता।''

''और तुम्हारे लाट साब बेटे अपने आपको श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पंक्ति में रखकर यह काम भी छोड़ देने को कहते हैं।''

''आप उनकी बातों पर क्यों जाते हैं। जब समझ आ जाएगी तब...।''

''जब समझ आ जाएगी तब तो और भी बड़ी-बड़ी बातें करेंगे। मुझे जीने और मरने की परिभाषा उन्हीं से सीखनी होगी।'' आचार्य जी उबल पड़े।

''अच्छा आप अब स्नान कर लीजिए, मैं नाश्ता तैयार करती हूँ।'' कहते हुए भागवंती रसोई में जाने को हुई तो उन्होंने जेब से कल रात के मुड़े-चुड़े नोट उसकी हथेली पर रख दिए।

दोपहर के समय आचार्य जी श्मशान पहुँचे। नंदू पहले से ही वहाँ मौजूद था। वह हाथ पर हाथ रखे बैठा था। एक बीड़ी खत्म होती तो दूसरी मुँह में लगा लेता। आचार्य जी को सामने से आते देखा तो उसकी जान में जान आई। उनके अलावा वहाँ कोई बातें करने वाला तो था नहीं। मरघट से दूर-दूर तक भी कोई आदमी दिखाई नहीं देता था।

''अभी कोई मुरदा नहीं आया?''

आचार्य जी के पूछने से पहले ही उसने 'ना' में सिर हिला दिया।

''यह सप्ताह बहुत बुरा बीता है। आगे की भी कुछ पता नहीं।''

''वह तो हैई आचार्य जी, लगता है कुछ गिरह-विरह है हम पर।''

''हाँ, बुरे दिन आए लगते हैं।'' आचार्य जी ने नंदू की बात का समर्थन किया।

''नंदू, मुझे अब लगता है कि हम बस नाम के ही ब्राह्मण हैं।''

''ऐसा क्यों आचार्य जी ?''

''क्योंकि कोई भी ब्राह्मण हमें अपने घर के दरवाजे के बाहर ही रखता है और ब्राह्मण ही क्यों बहुत से लोग हमारी सूरत देखना ही अपशगुन मानते हैं।''

नंदू उनका मुँह देखने लगा। आचार्य जी के चेहरे पर गहरी काली छाया उतर आई थी। उसे लगा, उनका रंग एकदम काला पड़ गया है।

''क्या ब्राह्मणों में ऊँच-नीच होती है ? वहाँ भी छुआ-छात है ?'' नंदू ने बड़े आश्चर्य भरे स्वर में पूछा।

आचार्य जी के चारों ओर बहुत से चेहरे मंडराने लगे। ये अपने चेहरे लगते थे, लेकिन उन पर घृणा, उपेक्षा और तिरस्कार बिखरा हुआ था।

उन्होंने अपना एक हाथ नंदू के कंधे पर रख दिया — ''हमें कहा जाता है महाब्राह्मण... पर इसका अर्थ जानते हो नंदू... महाशूद्र...।''

नंदू ने अपने कंधे पर रखे हुए हाथ के स्पर्श को महसूस किया। कितना अपनत्त्व था उसमें। उसने अपने एक हाथ से कंधे पर रखे आचार्य जी के हाथ को दबाया और बड़ी तृप्ति भरी आँखों से उन्हें देखने लगा।

शब्दार्थ-टिप्पणी

नत मस्तक झुकना, झुका हुआ **उम्र** अवस्था **अभ्यस्त** आदी **नजदीक** पास **रोष** क्रोध **मरघट** श्मशान-घाट **इन्तजाम** व्यवस्था **हुड़क** ललक **लावारिस** अनाथ, जिसका कोई वारिस न हो **सड़ांध** सड़ने की दुर्गंध **जाहिर** प्रकट **अफसोस** दु:ख **खसोटू** खींचने वाला

मुहावरे

कलेजा फटना - अति दु:खी होना

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) नंदू और आचार्य जी का परिवार कहाँ रहता था ?

(2) मरघट पर आचार्य जी का कार्य क्या था ?

(3) विधवा पुत्री का पुनर्विवाह करवाने में आचार्य जी असमर्थ क्यों थे ?

(4) आगंतुक के प्रति नंदू और आचार्य जी की नाराजगी का क्या कारण था ?

(5) लालटेन की रोशनी में आचार्य जी ने क्या देखा ?

(6) बस्ती वाले आचार्य जी को ब्राह्मण समाज पर कलंक क्यों मानते थे ?

(7) मरघट से आने के उपरान्त आचार्य जी का दैनिक कार्य क्या था ?

(8) बड़ा बेटा आचार्य जी पर अपना क्रोध किन शब्दों में व्यक्त करता है?

(9) नंदू और आचार्य जी को ऐसा क्यों लगता है कि उनके बुरे दिन आ गए हैं?

2. उत्तर लिखिए :

(1) आचार्य जी मुर्दे पर चढ़ाई जाने वाली चादरों को बेचने पर विवश क्यों हैं?

(2) रोजी-रोटी की इच्छा ने आचार्य जी की मानवीय संवेदनाओं को समाप्त कर दिया है - स्पष्ट कीजिए।

(3) मुर्दे को लाने वाले मजदूरों में मानवीय संवेदनाएँ जीवन्त हैं - स्पष्ट कीजिए?

(4) मजदूरों द्वारा दिए गए पैसों को आचार्य जी द्वारा लेना क्यों अनुचित है?

(5) आचार्य जी तथा उनके परिवार की सामाजिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

4. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

(1) ''कई बार मन हुआ कि विधवा बेटी का दूसरा विवाह कर देना चाहिए पर समाज की मान्यताओं के आगे नतमस्तक हो गए।''

(2) ''हमारे घर का गुजारा ही तब तक चलता है जब कोई मरता है। किसी के घर में अंधेरा होने पर ही हमारे घर में उजाला होता है।''

5. मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

कलेजा फटना, नतमस्तक होना

योग्यता-विस्तार

- सामाजिक कुरीतियों के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए।
- आधुनिक युग में पैसा कमाने की दौड़ में मानव अपनी संवेदनाएँ खो चुका है - स्पष्ट कीजिए।

●

9 इंटेलेक्चुअल्स पार्लर

भगवती प्रसाद द्विवेदी

(जन्म : सन् 1950 ई.)

भगवती प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के दलछपरा में हुआ था। हिन्दी-भोजपुरी के रचनाकार के रूप में उन्हें जाना जाता है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास और लघुकथाओं की रचना की है। 'अस्तित्व बोध' एवं 'चीर हरण' उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। 'नई कोपलों की खातिर' उनका प्रमुख उपन्यास है। 'भविष्य का वर्तमान' तथा 'थाती उनके' लघुकथा संग्रह हैं। उन्होंने वन कविता संग्रह तथा बाल कहानियाँ भी लिखी हैं। कुल मिलाकर उनकी अठहत्तर रचनाएँ मिलती हैं।

उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से वर्ष 2013 का निराला पुरस्कार तथा 2014 का सूर पुरस्कार प्राप्त हुआ। बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद से विशिष्ट साहित्य सेवा सम्मान मिला। इसके अलावा उन्हें बाल साहित्य - सृजन के लिए कई पुरस्कार प्राप्त हैं। उन्हें विद्या वाचस्पति की मानद् उपाधि भी प्राप्त हुई है।

प्रस्तुत रचना हमारे देश के कथित बुद्धिजीवियों की रुग्ण मानसिकता पर मार्मिक व्यंग्य है। आरंभ में ही लेखक ने ब्यूटी पार्लरों की भाँति इंटेलेक्चुअल्स पार्लरों का होना बहुत जरूरी बताया है। जिस तरह सुंदर होना आवश्यक नहीं, सुंदर दिखना अधिक आवश्यक है, उसी तरह बुद्धिजीवी होना जरूरी नहीं, बुद्धिजीवी दिखना जरूरी है। और इसके लिए ब्यूटीपार्लरों की ही तरह गली-गली में इंटेलेक्चुअल्स पार्लर का होना आवश्यक है। लेखक के विचार से बुद्धिजीवी दिखने के लिए सचमुच की बौद्धिकता जरूरी नहीं है। इसके लिए गंजा होना, डाइबिटीज होना, ऐनक लगाना, लोगों का दिमाग चाटना, हर बात में तिल का ताड़ करना, नास्तिक कहलाना तथा विदेशी भाषा या विदेश की बातें बताना आदि मुख्य लक्षण हैं। अत: ऐसे बुद्धिजीवी तैयार करने के लिए इंटेलेक्चुअल्स पार्लरों की बड़ी आवश्कयकता है। व्यंग्यकार ने कुकुरमुत्ते की तरह फैले-पसरे ब्यूटीपार्लरों पर भी तीखा व्यंग्य किया है।

विकासशील देश इंडिया में इंटेलेक्वुअल्स पार्लर की जरूरत शिद्दत से महसूस की जा रही है। यह भी क्या बात हुई कि महानगर से कस्बों तक सौंदर्य श्रीवृद्धि करने वाले ब्यूटी — पार्लर तो कुकुरमुत्ते-से फैलते-पसरते चले जाएँ, पर बुद्धिजीवी बनाने वाले पार्लर? बस, ढूँढ़ते रह जाओगे। इस साजिश में भी अवश्य विदेशियों का हाथ है, ताकि यहाँ लोगों की बौद्धिकता में चार-चाँद लगे ही नहीं और इंडियन लल्लू सिर्फ चारा खाते रहें, पगुराते रहें। भले ही बुद्धिजीवी होना या बनना कतई जरूरी न हो, पर बुद्धिजीवी दिखना तो नितांत आवश्यक है, वरना कोई घास भी क्यों डालेगा। इसी के अभाव में पड़ोस का एक मनचला युवक बेमौत मारा गया। हुआ यूँ कि एक सौंदर्य-साम्राज्ञी को पाने के लिए वह भी जेंट्स ब्यूटी पार्लर में हेयर स्टाइल, भौंहें और न जाने क्या-क्या दुरुस्त करवाता रहा, निखरवाता रहा। जब खूबसूरत बेटी का बाप अपनी बिटिया की जिद पर उस नायाब बेटे के डैडी से शादी की बाबत मिलने आया तो कमर मटकाऊ लड़के का हाव-भाव देखकर जल-भुन गया। इस पर भी जब बेटे के डैडी ने गर्व से सीना फुलाए कहा — ''मेरा लड़का लाखों में एक है... ऐसा लड़का आपको चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा'', तो लड़की के मुँहफट बाप ने जवाब दिया — ''क्यों नहीं। मगर माफ करेंगे, मुझे आपके खूबसूरत बेटे के साथ कोई ऐसी-वैसी हरकत तो करनी है नहीं। लड़के को हेल्दी और इंटेलिजेंट, इंटेलेक्चुअल होना चाहिए। इसकी स्त्रियोचित खूबसूरती को क्या मेरी बेटी चाटेगी? हुँह !'' अगर वह इंटेलेक्चुअल्स पार्लर में गया रहता तो क्या उसे और उसके डैडी को वह दिन देखना पड़ता?

जैसे हर चमकने वाली पीली चीज सोना नहीं होती, वैसे ही हर बुद्धिजीवी दिखने वाला व्यक्ति बुद्धिजीवी हो, यह कतई आवश्यक नहीं। बुद्धिजीवी होना और बुद्धिजीवी दिखना अलग-अलग बातें हैं, वैसे ही, जैसे खूबसूरत होना और बात है तथा खूबसूरत दिखना दीगर। तन के साथ मन की खूबसूरती की तो बात ही अलग है। मानसिक, चारित्रिक व स्वस्थ दृष्टिकोण

वाली सुंदरता की बात भी बेमानी है। शारीरिक सुंदरता भी दिखाऊ होनी चाहिए, टिकाऊ नहीं। पहले लोग आम खाने से मतलब रखते थे, पेड़ गिनने से नहीं। मगर अब तो आम खाने से कहीं ज्यादा जरूरी है पेड़ गिनना। अत: बुद्धिजीवी होने या बनने की बजाए बुद्धिजीवी दिखना ही प्राथमिकता होनी चाहिए। मगर क्या दुर्भाग्य है इस महान देश का कि खूबसूरत दिखने दिखलाने वाले ब्यूटी पार्लरों की भरमार तो गली-कूचों में है, पर इंटेलेक्चुअल्स पार्लर सिरे से नदारद ! यह षड्यंत्र नहीं तो भला और क्या है ?

हाल ही में लाजोला, कैलिफोर्निया के साल्क बायोलॉजिकल संस्थान के वैज्ञानिकों ने चूहों पर परीक्षण कर पता किया है कि नियमित दौड़ने से बौद्धिकता बढ़ती है। उन्होंने पाया कि खूब दौड़ लगाने वाले चूहों की सीखने और याद रखने की ताकत में वृद्धि होती है, क्योंकि इससे सीखने और याद रखने के काम आने वाली मस्तिष्क-कोशिका हिप्पोकैंपी के काम करने की क्षमता बढ़ जाती है। बहरहाल, यह खोज तो अब जाकर हुई है, जबकि दूर की कौड़ी खोज निकालने वाले बुद्धिजीवी शुरू से ही चूहे-दौड़ में शामिल रहे हैं ! 'मार्निंग वाक' के मूल में भी शायद यही बात रही हो। मगर बुद्धिजीवी तो इसका कारण डाइबिटीज बताते हैं। बुद्धिजीवी होने की पहली शर्त है, खुद को डाइबिटीज का मरीज घोषित करना। जो चाय में चीनी ले, तली हुई चीजें और मिठाइयाँ खाए-वह बुद्धिजीवी हो ही नहीं सकता।

'नीतिश्लोक' में कभी कहा था कि सभा में विद्वान और मूर्ख की पहचान बोलने के बाद ही होती है। अब तो इसे सिरे से खारिज कर दिया गया है। जो पहली नजर में बुद्धिजीवी नजर न आए, वह भला बुद्धिजीवी कैसा! सिर के चांद से ही तो बौद्धिकता में चार चाँद लगते हैं। अत: गंजापन बौद्धिकता का पर्याय है। जो जितना गंजा, वह उतना ही बौद्धिक। जो गंजे नहीं हैं, वे कृत्रिम साधनों का इस्तेमाल कर बुद्धिजीवियों की श्रेणी सहज ही पा सकते हैं। मरता क्या न करता! महिलाओं के लिए पहलवानों जैसे छोटे-छोटे बाल भी चलेंगे। पर, पुरुषों के लिए गंजी खोपड़ी के साथ-साथ चेहरे पर दाढ़ी रखना भी जरूरी है। दाढ़ी अगर खिचड़ी हो या बकरदाढ़ी (फ्रेंच कट) हो तो फिर क्या कहना! मगर इतना कुछ होने के बावजूद जिस शख्स की आँखों पर ऐनक न हो, वह बुद्धिजीवी कि बजाए लफंगा ही माना जाएगा। यदि पावर वाले चश्मे की आवश्यकता न भी हो, तो जीरो पावर का चश्मा लगाकर बुद्धिजीवी कहलाने में हर्ज क्या है!

चाहे मर्द हो या औरत, जीन्स पैंट पर खादी का कुरता या कोई रफ-टफ शर्ट, कंधे से लटकता आयातित बैग बुद्धिजीवी की निशानियाँ हैं। सिर्फ पहनावे-ओढ़ावे में ही नहीं, उठने-बैठने, चलने-फिरने और बोलने-बतियाने में भी इंटेलेक्चुअल्स की खुश्बू आनी चाहिए। खाने और चाटने की कला में प्रवीणता तो अपेक्षित है ही। तीखी-खट्टी चीजों की जगह दिमाग चाटना और भोजन की बजाये भेजा खाना बुद्धिजीवियों की फितरत है। कहीं इनकी चुप्पी अखरती है तो कहीं अकारण चाटने की चटोरी अदा। बुद्धिजीवी का मतलब ही होता है बुद्धि को जीनेवाला । सोते-जागते, उठते-चलते बुद्धि का इस्तेमाल। चलते-फिरते बुद्धिविलासी होते हैं बुद्धिजीवी। बुद्धिजीवी तो बस बुद्धि को जीता है। इशारों-इशारों में ही, बिल्कुल उसी तरह, जिस तरह कालिदास ने एक ऊंगली के जवाब में दो ऊंगलियाँ और थप्पड़ के उत्तर में मुक्का दिखाकर विद्योत्तमा को जीत लिया था। अगर अपनी जिद होगी बुद्धिजीवी से शारीरिक श्रम करवाने की तो वह उसी डाल को कालिदास बनकर काटेगा, जिस पर स्वयं बैठा होगा। मान-सम्मान और मानद् उपाधियों का भुक्खड़ बुद्धिजीवी।

तिल को ताड़ और राई को पहाड़ बनाने में बुद्धिजीवी को महारत हासिल होती है। वह जिसे चाहे, शिखर पर पहुँचा सकता है और जिसकी चाहे, मिट्टी पलीद कर सकता है। कालिदास बनने के लिए अपनी ही डाल को काटने की कला उसे विरासत में मिली है। जिस क्षेत्र में वह कार्यरत है, उसका भट्ठा बैठाना वह जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। जो अत्याधुनिक नहीं, वह बुद्धिजीवी कैसा ! अत: अपने हर संस्कार, संस्कृति, परम्परा को सिरे से नकारते हुए इनसे जुड़े लोगों को बुर्जुआ व मनुवादी करार देना और खुद को खुले दिमाग का प्रगतिशील घोषित करना बौद्धिकता का द्योतक है। आस्तिकों की खिल्ली

उड़ाने, खुद को नास्तिक मानने, कट्टरपंथियों, मूर्तिपूजक, ब्राह्मणवादियों की खाट खड़ी करने तथा चोरी-छिपे मंदिरों में माथा टेकने में कोई हर्ज नहीं है। अंतर्विरोध ही तो बुद्धिजीवी होने का पुख्ता प्रमाण है। बगैर बोले महान मौनी वक्ता बनने, बगैर पढ़े विद्वान कहलाने और बगैर लिखे श्रेष्ठ सर्जक बने रहने की कला तो और विलक्षण है। हाँ, रौब गालिब करने की गरज से बात-बात में विदेशी उदाहरण देना न भूलें। मगर आपका लिखना-पढ़ना, बौद्धिकता झाड़ना कोई मायने नहीं रखता, यदि आप ऐरे-गैरे के समारोह-सम्मेलन में चले जाते हैं, नत्थू-खैरे से बोलते-बतियाते या सरोकार रखते हैं। इसलिए निहायत जरूरी है कि बुद्धिजीवी कहलाने के लिए आप बुद्धिजीवियों की कॉलोनी में रहें, बुद्धिजीवियों और सिर्फ बुद्धिजीवियों से सरोकार रखें और आम लोगों से न सिर्फ दूर रहें, बल्कि उन्हें अपने अस्तित्व से दूध की मक्खी की तरह निकाल दें। याद रखें, आप बुद्धिजीवी हैं, सिर्फ बुद्धिजीवियों के लिए हैं और सिर से पाँव तक, तन से मन-मस्तिष्क तक आजीवन बुद्धिजीवी रहेंगे। अगर आप इन मानदंडों के मद्देनजर सचमुच बुद्धिजीवी हैं तो जरा फेंकिये तो सही — इंटेलेक्चुअल्स पार्लर की जगमगाती दूधिया बौद्धिक मुसकान।

शब्दार्थ-टिप्पणी

शिद्दत दृढ़ता से **साजिश** षडयन्त्र **पगुराना** जानवरों द्वारा खाए गए चारे को अच्छी तरह से चबाना, जुगाली करना **दुरुस्त** ठीक **दीगर** अन्य **खारिज** नकारना, मना करना **प्रवीणता** निपुणता **फितरत** स्वभाव, प्रकृति **आयातित** बाहर से लाया गया **महारत** निपुणता **बुर्जुआ** पूंजीवाद **द्योतक** प्रतीक **पुख्ता** ठोस **इंटेलेक्चुअल** बौद्धिक

मुहावरे

गर्व से सीना फूलना अति प्रसन्न होना **लाखों में एक** अपवादरूप **चिराग लेकर ढूँढ़ना** बहुत ढूँढ़ना **दिमाग चाटना** दिमाग खराब करना **मिट्टी पलीद करना** दुर्दशा करना **खाट खड़ी करना** हालत खराब करना **ऐरा गैरा नत्थू खैरा** साधारण व्यक्ति **दूध की मक्खी** बेकार की चीज़, फेंकने लायक **चार चाँद लगाना** शोभा में वृद्धि

कहावत

- **तिल को ताड़ और राई को पहाड़ बनाना** छोटी-सी बात को बढ़ा देना
- **आम खाने से मतलब पेड़ गिनने से नहीं** अपने मतलब से काम रखना

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) लड़की के पिता ने रिश्ते से इन्कार क्यों किया ?

(2) रिश्ते के लिए लड़के में किन गुणों का होना आवश्यक है ?

(3) लेखक के अनुसार ''बुद्धिजीवी'' का क्या तात्पर्य है ?

(4) चूहों पर किए गए परीक्षण में क्या पाया गया ?

(5) बुद्धिजीवी होने की पहली शर्त क्या है ?

(6) लेखक ने बौद्धिकता का पर्याय किसे माना है ?

(7) लेखक के अनुसार 'इन्टेलेक्चुअल्स की खुशबू' से क्या तात्पर्य है ?

(8) बुद्धिजीवियों की फितरत क्या है?

(9) बौद्धिकता के द्योतक से क्या तात्पर्य है?

2. उत्तर लिखिए :

(1) भगवती प्रसाद द्विवेदी के अनुसार किसे बुद्धिजीवी नहीं कहा जाएगा?

(2) बुद्धिजीवी होना और बुद्धिजीवी दिखना अलग बातें हैं, इसके संदर्भ में लेखक के विचार स्पष्ट कीजिए।

(3) 'इन्टेलेक्चुअल्स पार्लर' में भगवती प्रसाद द्विवेदी के व्यंग्य के सभी सन्दर्भों को स्पष्ट कीजिए।

(4) लेखक के अनुसार बुद्धिजीवी कहलाने के लिए निहायत जरूरी क्या है? क्यों?

3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

(1) ''जैसे हर चमकने वाली चीज सोना नहीं होती वैसे ही हर बुद्धिजीवी दिखने वाला व्यक्ति बुद्धिजीवी हो, यह कतई आवश्यक नहीं।''

(2) ''दुर्भाग्य है इस देश का कि खूबसूरत दिखने दिखलाने वाले ब्यूटी पार्लरों की भरमार तो गली-कूचों तक में है, पर इन्टेलेक्चुअल-पार्लर सिरे से नदारद।''

(3) ''अन्तर्विरोध ही तो बुद्धिजीवी होने का पुख्ता प्रमाण है।''

4. मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

ऐरा-गैरा नत्थू खैरा, चार चाँद लगाना

5. कहावतों का अर्थ लिखकर वाक्य-प्रयोग कीजिए :

(1) आम खाने से मतलब पेड़ गिनने से नहीं।

(2) तिल को ताड़ और राई को पहाड़ बनाना।

योग्यता-विस्तार

- नए जमाने के कुछ पार्लरों के बारे में जानकारी एकत्रित कीजिए।
- इन्टेलेक्चुअल दिखना आधुनिकता का पर्याय है - अपने विचार व्यक्त कीजिए।

•

10 पर्यावरण और सनातन-दृष्टि

छगन मोहता

छगन मोहता का जन्म राजस्थान के बीकानेर में हुआ था। राजस्थान के इस सुप्रसिद्ध चिंतक और समाज-सुधारक ने महिला-शिक्षा और अछूतोद्धार के क्षेत्र में क्रांतिकारी काम किया। उनकी विधिवत् शिक्षा तो बहुत कम हुई किंतु उन्होंने स्वाध्याय के द्वारा धर्म, दर्शन, विज्ञान, समाज-राजनीति तथा साहित्य आदि का गहरा अध्ययन किया था। उनका संपूर्ण जीवन समाज-सेवा के लिए समर्पित हो गया।

उनके भाषणों - वक्तव्यों का संकलन 'संक्रांति और सनातनता' के नाम से प्रकाशित हुआ तो उससे गहरी हलचल मच गई और विचारकों ने उनकी बहुत सराहना की। राजनीति से अपने को अलग रखते हुए उन्होंने मानव के बेहतर जीवन के लिए निस्वार्थ काम किया। पर्यावरण को लेकर भी उन्होंने पर्याप्त विचार किया।

प्रस्तुत निबंध में पर्यावरण को व्यापक फलक पर परिभाषित करते हुए उसे बहुआयामी बताया गया है। पर्यावरण का सम्बंध सिर्फ प्रवृति से ही नहीं, प्राणी मात्र की प्रत्येक प्रवृत्ति से है। लेखक ने पर्यावरण की समस्या को भारतीय दृष्टि से समझने का प्रयास किया है तथा इस बात पर बल दिया है कि प्रकृति के साहचर्य और उसके साथ संतुलन को बनाये रख कर ही हम शुद्ध पर्यावरण में साँस ले सकेंगे। औद्योगिक और वैज्ञानिक विकास ने प्रकृति का अनावश्यक दोहन कर पर्यावरण को इतना प्रदूषित कर दिया है कि प्रदूषण से बचने की गंभीर समस्या दिन-दिन विकट बनती जा रही है। इसके हल के लिए हमें पश्चिमी सोच से परे हटकर भारतीय नजरिए से विचार करना होगा। प्रकृति में सर्जन और विसर्जन का जो सहज क्रम है उसे बनाए रखना जरूरी है। चूहों को मारने के लिए बिल्लियाँ हैं, साँप हैं तो फिर मनुष्य को इस में दखल देने की जरूरत नहीं है। प्रकृति ने जो संतुलन बनाया है वही पर्यावरण की रक्षा करने में समर्थ है।

पर्यावरण को भारतीय दृष्टि से समझने की कोशिश करें। इसके साथ हमारी हजारों वर्षों की मित्रता है जिसके अनुसार पर्यावरण का क्षेत्र कोरा प्राकृतिक पर्यावरण का क्षेत्र नहीं है। हमारे यहाँ प्रकृति का बहुत व्यापक अर्थ लिया गया है। संसार की कोई ऐसी चीज नहीं है जो प्रकृति से अलग हो। तो हमारा घर और परिवार वह भी एक पर्यावरण है। पर्यावरण की हमारी शास्त्रीय परम्परा भी रही है कि प्रत्येक मनुष्य पर्यावरण में ही पैदा होता है, पर्यावरण में ही वह जीता है, पर्यावरण में ही वह लीन हो जाता है। पर्यावरण की इतनी व्यापक परिभाषा है। अब पर्यावरण के स्तर देखिए। मनुष्य परिवार में पैदा होता है, परिवार में जीता है, परिवार में मरता है या विलीन हो जाता है। आज उसे चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि पर्यावरण बहुआयामी है। प्रत्येक परिवार के इर्द-गिर्द एक सामाजिक पर्यावरण है और उसके कई आयाम हैं। एक आयाम आर्थिक है, दूसरा आयाम राजनैतिक है, तीसरा आयाम सांस्कृतिक है। बहु-केन्द्रित होने के कारण प्रत्येक आयाम का अपना एक केन्द्र होता है जहाँ से वह क्रियाशील रहता है। इस सारे सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक पर्यावरण के इर्द-गिर्द एक और सजीव पर्यावरण है जिसे हम पशु-पक्षियों तथा जीवधारियों का पर्यावरण कहते हैं। उसके भी चारों ओर इन सब स्तरों में ओतप्रोत भौतिक तत्त्वों का पर्यावरण है। जिसे हम भौतिक, जलीय, वायवीय, आग्नेय और आकाशीय या विद्युत चुम्बकीय कहते हैं। ये प्रकृति के स्थल और प्रत्यक्ष आवरण हैं जिनका हमें अपनी ही इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान और भान होता रहता है। लेकिन पर्यावरण के सम्बन्ध में मीमांसा करते हुए हमारी परम्परा सिर्फ इतने में ही इतिश्री नहीं मान लेती। वह यह भी कहती है कि इन दृष्ट, प्रत्यक्ष स्तरों के अतिरिक्त पर्यावरण के कुछ अदृष्ट और अप्रत्यक्ष स्तर भी हैं जिनमें हम और हमारा दृष्ट और व्यक्त पर्यावरण प्रभावित होता रहता है और प्रभावित करता भी रहता है। उन स्तरों को हम जैविक या पर्यावरण एवं मानसिक या चित्तावरण कहते हैं। इन सब आवरणों से हमारा प्रतिक्षण सम्बन्ध बना हुआ है और हमारे जीवन व्यापारी का इन सब स्तरों से आदान-प्रदान होता रहता है। हमारे यहाँ कहावत है कि ''यदि पानी कुएँ में नहीं है तो वह खेमें में यानी ऊपर कुण्ड में कहाँ से आयेगा।''

भारतवर्ष की हजारों वर्षों से यह मान्यता रही है कि प्रकृति से सन्तुलन को कायम रखा जाए। यह बहुत अच्छा है, मनुष्य के लिए भी अच्छा है और प्रकृति के लिए भी अच्छा है। इस सन्तुलन को अस्वाभाविक रूप से तोड़ो। लेकिन विज्ञान का जिस ढंग से

प्रयोग हो रहा है उसमें ऐसा लगता है कि सत्ता के लोभ से, धन के लोभ से ग्रस्त सभ्यता उसे रहने नहीं देती। वह हर हालत में प्रकृति के सन्तुलन को तोड़ना चाहती है। क्यों तोड़ना चाहती है ? मुझे लगता है कि उसमें एक दृष्टि-दोष है। पूर्व की दृष्टि यह रही है कि प्रकृति हमारी माता है और हमें उसके साथ सहयोग करना चाहिए। हमें उसके नियम समझ कर उसके अनुसार बर्ताव करना है। यह सही है कि प्रकृति किसी का लिहाज नहीं करती और उसके नियम समझना साइन्स के जरिए ही हो सकता है। लेकिन साइन्स के द्वारा प्रकृति के नियम समझ कर उसके साथ हमें सहयोग करना है। उसे आदर देना है। दूसरी दृष्टि है पश्चिम की कि प्रकृति एक तेज नाखूनों वाली राक्षसी है जो हर हालत में हमें मारना चाहती है, नष्ट करना चाहती है और इसलिए हमें किसी तरह से उसके साथ संघर्ष करना है। संघर्ष में अगर हम 'फिट' हैं तो हम जिन्दा रह सकते हैं नहीं तो प्रकृति हमें मार देगी। इसलिए प्रकृति को जानकर प्रकृति को अपने वश में करना है, इसका शोषण करना है। यह प्रकृति के साथ दुश्मनी की दृष्टि है और ये पश्चिम की अधिकांश दृष्टि है और इस दृष्टि को यदि आप पूरी तलाश करें तो बहुत पुरानी है यह दृष्टि।

पश्चिम ने दुनिया का नेतृत्त्व किया और आज हम देखते हैं कि जितना पर्यावरण प्रदूषण पश्चिम के उद्योग और व्यापार ने पैदा किया वह बहुत ज्यादा है।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि हमारे यहाँ भी तो एक जमाना रहा है जिसमें व्यापार भी रहा है, सम्पन्नता भी रही है और प्रकृति का दोहन भी किया है। चार शब्दों का फर्क ध्यान में रखें—एक है प्रकृति का पोषण, दूसरा है प्रकृति का शोषण, तीसरा है प्रकृति का दोहन और चौथा है प्रकृति का प्रदूषण। इन चारों को आप समझ लीजिए तो प्रकृति के साथ हमें क्या सम्बन्ध रखना है, यह ध्यान में रखना है।

प्रकृति का हम शोषण करते हैं और जिस चीज का शोषण करते हैं उसे हम बिल्कुल नष्ट कर देना चाहते हैं। मैं आपको बीकानेर का ही एक उदाहरण देना चाहता हूँ। आप सबेरे-सबेरे जस्सूसर गेट जाकर चार-छह घण्टे के लिए बैठ जाएँ। आपको फोग की लकड़ियों के भरे हुए ट्रक दिखाई देंगे। वे लकड़ियाँ जड़ से काटी जा रही हैं एकदम। आइन्दा उगेगा नहीं फोग और आज लगाया जाए और 'बीस सूत्रीय कार्यक्रम' के अनुसार उस वृक्ष को लगाया जाय तो शायद 50 वर्ष में फोग के वृक्ष तैयार होंगे। तब तक क्या होगा ईंधन का। लेकिन आज ईंधन भी एक व्यापार की वस्तु बन गई है और उसके लिए ट्रक के ट्रक फोग को जड़ों से काटा जा रहा है। हमारी परम्परा में हमेशा पर्यावरण का पूजन भी किया जाता रहा। पर्यावरण की चीजों में देवत्व माना गया है और इसीलिए जीवित वृक्ष को काटना पाप समझते हैं। कभी भी नहीं काटना चाहिए उसे, और जड़ से तो कभी उसे काटना ही नहीं चाहिए। अगर सूखा भी है तो उसे जड़ से नहीं काटना चाहिए। जब तक कि वृक्ष पूरा मर नहीं जाता है। उसकी सूखी डालियों को काट लो ताकि वृक्ष फिर जिन्दा रह सके और वह आगे बढ़े। लेकिन आज उसका इतना शोषण होता है कि पन्द्रह-बीस वर्ष के बाद बीकानेर से पूगल के इलाके की तरफ पाकिस्तान की सीमा के इलाके तक आपको फोग की एक लड़की तक नहीं मिलेगी।

प्रकृति का अपना एक सन्तुलन है। मनुष्य को उसमें ज्यादा फेर-बदल करने की जरूरत नहीं है। चूहों को मारने के लिए बिल्लियाँ हैं, चूहों को मारने के लिए पक्षी भी हैं, चूहों को मारने के लिए खेतों में साँप भी हैं। वे सन्तुलन को बनाए रखते हैं। साँप को मारने के लिए पक्षी बहुत सारे हैं। चील भी मार देती है, दूसरे पक्षी भी मार देते हैं और नेवला भी मार देता है। तो प्रकृति में एक ऐसा सन्तुलन है जिसे हद से आगे बढ़ा देते हैं, तोड़ देते हैं, तो वह सन्तुलन बिगड़ता है और सन्तुलन बिगड़ना अस्वास्थ्य का लक्षण है। हमारे शरीर के अंगों का सन्तुलन है। हमारे रक्त-संचार का, हमारे श्वास का, हमारी पाचनक्रियाओं का एक सन्तुलन , एक सामंजस्य है। यह सामंजस्य जब बिगड़ता है तो कोई एक चीज बढ़ती है और दूसरी चीज घटती है। जो घटती है उसका शोषण होता है, जो बढ़ती है उसकी वृद्धि होती है, उससे स्वास्थ्य की हानि होती है। शरीर में आठ-दस ट्यूमर निकल आएँ और अंग सूख जाएँ एकदम 'एट्रोफी' हो जाए तो उसे हम स्वस्थ नहीं कह सकते। लेकिन हमारे उद्योगप्रधान आर्थिक ढाँचे से हमारे समाजिक और सांस्कृतिक शरीर में ट्यूमर पैदा हो जायेंगे। और ट्यूमर हमेशा शरीर के दूसरे आवश्यक अंगों का शोषण करके होते हैं। तो शोषण और उससे ठीक जुड़ी हुई प्रक्रिया है प्रदूषण। जो शोषण करते हैं उसी से प्रदूषण होता है।

मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि इस युग में हम उद्योग-धन्धे न करें या इण्डस्ट्री न हो। पर इण्डस्ट्री पर जिन लोगों

ने बहुत गहराई से सोचा है उनमें शूमाकर का नाम महत्त्वपूर्ण है। अभी कुछ वर्ष हुए उनकी मृत्यु हुई है। उन्होंने 'स्मॉल इज आ ब्यूटीफुल' नामक एक किताब लिखी है। वह कहते हैं कि इण्डस्ट्री चलाने के लिए पावर लगाएँ, चाहे आप उसे एटम से चलाएँ या बिजली से चलाएँ, किसी तरह से चलाएँ लेकिन उसका परिवेश के साथ सन्तुलन होना चाहिए और परिवेश के साथ सम्बन्ध होना चाहिए — आर्थिक सम्बन्ध भी, प्रशासनिक सम्बन्ध भी, सामाजिक सम्बन्ध भी और सांस्कृतिक सम्बन्ध भी। इन सारे सम्बन्धों का जो कॉम्पलेक्स है उसमें यदि सन्तुलन, सामंजस्य है, तो वह स्वस्थ रहेगा, शोषण नहीं होगा और उसके माध्यम से एक षोषण भी मिलेगा और पारस्परिकता बढ़ेगी।

मनुष्य भी एक प्राकृतिक प्राणी है और उसका मन और बुद्धि भी प्रकृति का ही एक बहुत सूक्ष्म हिस्सा है। हम देखते हैं कि गुलाब का पौधा है, उसके नीचे खाद होती है, उसके इर्द-गिर्द तना होता है, उसके बाद काँटे होते हैं, काँटों के बाद पत्ते होते हैं, उनके बीच फूल किस तरह से खिलता है। गन्ध होती है। हमारी बुद्धि और हमारा मन फूल की तरह खिली हुई चीज हो सकती है। लेकिन उसके नीचे तो सारा सम्बन्ध इसी तरह का है। काँटे भी हैं, पत्ते भी हैं, तना भी है, मिट्टी भी है और जो 'मिनरल्स' धातुएँ हैं वह उन सबका पोषण करती हैं। इन सबको निकाल दें तो गुलाब के फूल का कोई अस्तित्व नहीं है। तो हमारी बौद्धिकता का, हमारी नैतिकता का, जिन-जिन ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की हम बातें करते हैं उन सबका आपस में निर्भरता का सम्बन्ध है और वह परिवेश के साथ निरन्तर बना रहता है। दो मिनट साँस रोककर देखें तो हमें पता लगेगा कि हवा की कितनी कीमत है। दो मिनट अगर हवा हमारे फेफड़े में नहीं जाए तो दम घुटने लगता है। तो परिवेश के जितने भी भौतिक तत्त्व हैं — हवा, पानी, प्रकाश, मिट्टी सबके साथ हमारा एक सन्तुलन होना चाहिए। उसी तरह जितने प्राणी, चाहे साँप हो, चीता हो, गाय हो, पशु हो, कोई भी हो, उनके साथ हमारा एक सन्तुलन बना रहना चाहिए। इसे कहते है इकोलोजी। एक नया साइन्स पनप रहा है और वह पर्यावरण का ही विज्ञान है। इसका अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से होता है क्योंकि वह सारी एक पुरानी कहावत है संस्कृत में, 'धर्मो रक्षति रक्षित:।' आप धर्म की रक्षा करिए, धर्म आपकी रक्षा करेगा। आप इसी अर्थ में लीजिए कि आप परिवेश की रक्षा करें, पर्यावरण को प्रदूषण से बचाएँ, पर्यावरण आपकी रक्षा करेगा। आप चुपचाप उसे उपेक्षा से नष्ट होने दीजिए, उसकी परवाह न करिए, इसे और जहरीला होने दीजिए, शोषित होने दीजिए, आपका पोषण मर जायेगा। श्वास के जरिए से, पानी के जरिए से, अन्न के जरिए से, मांस-मछली के जरिए से, एक जहर हमारे अन्दर पहुँचता जायेगा और हम धीरे-धीरे मृत्यु की ओर प्रयाण करते रहेंगे। तो मैं समझता हूँ कि मानव जाति के लिए जीवन और मरण का प्रश्न है और इसको सुलझाने के लिए प्रकृति के साथ सन्तुलन और सामंजस्य बनाए रखने की जरूरत है, और यही मनुष्य का धर्म है क्योंकि जो स्वाभाविक होता है वही धर्म होता है। जो अस्वभाविक होता है वह धर्म नहीं, होता है। सम्प्रदाय आदि को मैं धर्म नहीं मानता। 'जैन दर्शन' में लिखा है कि जो वस्तु का स्वभाव है, वही धर्म है। आग का जलना ही आग का धर्म है, पानी का बहना ही पानी का धर्म है, हवा का संचरित होना, श्वास का चलना हवा का धर्म है। जिस वस्तु का जो धर्म है उसके साथ में सन्तुलन ही हमारे शरीर को बनाए हुए है। उसे नहीं बिगाड़े। उसको बिगाड़ने की जो दृष्टि है, वह है—सामाजिक प्रदूषण। यह जो आज की अर्थव्यवस्था है उसे हम भोग-प्रधान अर्थव्यवस्था भी कह सकते हैं। यह सारी चीजों का सन्तुलन बिगाड़ती है।

पर्यावरण की दृष्टि को हमें शोषण रहित बनाना है, वह नारे बाजी से नहीं होगा। जिसे हम इकोलोजी की दृष्टि कहते हैं, इकोलोजी की दृष्टि को, पर्यावरण की दृष्टि को हमें सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्र तक में उतारना है। अगर समाज में संघर्ष है, कलह है, शोषण है, अत्याचार है, अन्याय है तो निश्चित बात है कि समाज का यह जो परिवेश है और उसका पर्यावरण है वह भी दूषित हो रहा है। पर्यावरण का दूषण मानसिक तरीके से भी होता है, नारेबाजी से भी होता है, गुण्डागर्दी से भी होता है। उसका शोषण होता है। तत्काल हत्याओं में परिणत हो जाता है, तत्काल दुर्घटनाओं में, आत्मदाह में या आत्महत्याओं में परिवर्तित हो जाता है। तो प्रदूषण पर विचार करते हुए उसके तमाम पहलुओं पर विचार करना चाहिए।

शब्दार्थ-टिप्पणी

आयाम विस्तार, फैलाव **मीमांसा** विचारपूर्वक तत्त्वनिर्णय, विवेचना करना **इतिश्री** समाप्ति, पूर्णता **सामंजस्य** औचित्य, अनुकूलता

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) पर्यावरण के आयाम बताइए।

(2) पशु-पक्षियों और जीवधारियों का पर्यावरण किसे कहते हैं?

(3) प्रकृति के संतुलन के लिए क्या करना चाहिए?

(4) पश्चिम की प्रकृति कैसी है?

(5) सबसे ज्यादा प्रदूषण किसने किया है? कैसे?

(6) हमारे जीवन में हवा की क्या अहमियत है?

(7) आज की अर्थव्यवस्था कैसी है?

2. उत्तर लिखिए :

(1) पर्यावरण का संतुलन कैसे कायम रख सकते हैं?

(2) प्रकृति के शोषण से क्या होता है - उदाहरण के साथ समझाइए।

(3) शोषण से प्रदूषण कैसे होता है - समझाइए।

(4) इन्डस्ट्रीज को परिवेश के साथ क्यों संतुलन रखना चाहिए?

(5) प्रकृति के साथ संतुलन और सामंजस्य कैसे बनायएँगे?

3. संधि विच्छेद कीजिए

अत्याचार, निरंतर, प्रत्यक्ष, चित्तावरण

योग्यता-विस्तार

- 'पर्यावरण प्रदूषण : एक समस्या' - विषय पर निबन्ध लिखिए।

•

11 अग्निपथ

मालती जोशी

(जन्म : सन् 1934 ई.)

मालती जोशी का जन्म औरंगाबाद में हुआ था। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। कविता, कहानी और उपन्यास उनकी प्रिय विधा है। मूलत: मराठी भाषी मालती जी हिन्दी की महिला लेखिकाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। बदलते हुए सामाजिक परिवेश में नारी-जीवन की समस्याओं एवं संवेदनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति उनकी कथा-कृतियों में हुई है। उनका समग्र साहित्य जीवन के उन मानवीय मूल्यों का पक्षधर है जिसका आधार मध्यवर्गीय परिवार की नारी बनती है। भाषा की सहजता और सरलता पात्रों के अनुभवों को संप्रेषित करने में सहायक होती है।

उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं - समर्पिता, पाषाणयुग, पिया पीर न जानी, परिणय और मध्यांतर। उनके उपन्यासों के नाम हैं - राग विराग, सहचारिणी, पटाक्षेप, शोभायात्रा और रहिमन धागा प्रेम का। उनकी कहानियों का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है और हिन्दी में धारावाहिक बने हैं। उन्हें म. प्र. शासन का साहित्य शिखर सम्मान, अहिन्दी भाषी लेखिका सम्मान तथा मध्यप्रदेश हिन्दीसाहित्य सम्मेलन का भवभूति अलंकरण सम्मान प्राप्त हुआ है।

'अग्निपथ' कहानी चंदा नामक एक सुंदर, सुशील एवं शिक्षित युवती की व्यथा-कथा है, जो पति के क्रूर व्यवहार, सास की कटूक्तियों और दुर्भाग्य के दारुण खिलवाड़ का शिकार बन गई है। युवावस्था में अपनी सहेलियों में सबसे ज्यादा तेज-तर्रार चंदा का विवाहित जीवन नरक की यातना-सा बन गया है। इन सबके बावजूद संघर्ष करने की उसकी अदम्य इच्छा और बच्चों का भविष्य सँवारने के लिए आत्मनिर्भर बनने का उसका संकल्प उसके चरित्र को नई गरिमा तथा नई ऊँचाई प्रदान करता है। जीवन की अग्नि-परीक्षा में से सफलतापूर्वक बाहर आने का उसका साहस प्रेरक बन जाता है।

साल-दो साल बाद जब घर लौटती हूँ तो कहने-सुनने को कितनी बातें इकट्ठी हो जाती हैं। नियमित रूप से पत्रों का आदान-प्रदान होता रहता है। फिर भी बहुत कुछ अनकहा रह जाता है। खासकर सखी-सहेलियों की बातें, गली-मोहल्ले के किस्से। कुशल क्षेम की चिट्ठियों में ये सब बातें, कहाँ आ पाती हैं। इसलिए फिर चाय पीते हुए, खाना खाते हुए बातों का सिलसिला चलता ही रहता है।

खाना खाते हुए अम्मा ने पूछा, ''चंदा का तो तुझे पता चल ही गया होगा न ? चिट्ठी में लिखा था शायद।''

''नहीं तो। क्या हुआ उसे ?''

''अरे, उसे क्या होना है ? पिछले महीने उसका घरवाला नहीं रहा।''

क्षण भर को, सिर्फ क्षण भर का कौर हाथ ही में रह गया। दूसरे ही पल छुटकारे की साँस लेते हुए मैंने कहा, ''चलो अच्छा हुआ। एक पाप कटा।''

इस खबर पर दूसरी कोई टिप्पणी हो ही नहीं सकती थी, पर अम्मा एकदम भड़क गई, ''कैसी बात कर रही है ? उस बेचारी की तो दुनिया ही उजड़ गई।''

'' अम्मा ! उसकी दुनिया बसी ही कब थी जो उजड़ गई। और बेचारी तो वह तब थी जब वह भला आदमी उसकी जिंदगी को नरक बना रहा था। अब कम-से-कम चैन से जी तो सकेगी। मुझे तो खुशी है, उसकी जिंदगी का एक दु:खद अध्याय समाप्त हो गया।''

''जैसा भी था, उसका पति था वह। उसके दम पर चार लोगों के बीच वह सिर उठाकर चल सकती थी। वह चुटकी भर सिंदूर न रहे तो औरत का जीवन राख हो जाता है बिन्नो ! पर तुम आजकल की लड़कियाँ यह सब नहीं समझोगी।''

मैं कहना चाह रही थी कि इस चुटकीभर सिंदूर के रहते भी चंदा का जीवन राख ही था। अब और राख क्या होगा ? पर चुप लगा गई। जब से बाबू जी गए है, अम्मा इस मामले में बहुत भावुक हो गई है। इसलिए उनका दिल दुखाने की इच्छा नहीं हुई। फिर पूरे दिन चंदा ही मन में चक्कर काटती रही। स्कूल से लेकर कॉलेज तक की सारी बातें याद आती रहीं। हम शैतान लड़कियों का एक ग्रुप था। चंदा हम सबकी लीडर थी, क्योंकि वही हम सब में स्मार्ट, निडर और दिलेर थी। शादी के मंडप में जब उसे घूँघट में दबी-ढकी देखी थी तो हम सबकी हँसी छूट गई थी। लगा था, जैसे चंदा कोई स्वाँग कर रही हो।

हमारे ग्रुप में सबसे पहली शादी चंदा की हुई थी। इसीलिए हम सबने गोपियों की तरह उसके दूल्हे को घेर रखा था। वह जैसे सबके सपनों का राजकुमार था। सुदर्शन, आकर्षक, रोबदार.... । किसी विदेशी कंपनी में एक्जीक्यूटिव पोस्ट पर था। बोल-चाल में एक विदेशी ठसक थी। हम सब उसकी एक-एक भंगिमा पर मिटी थीं। एक-एक मुस्कान पर न्योछावर हो रही थीं।

साल भर तक चंदा हम सबकी ईर्ष्या की विषय बनी रही। फिर एक-एक करके हम सबकी शादियाँ होती गईं। चंदा का ब्याह पुराना पड़ गया।

फिर एक दिन उड़ते-उड़ते खबर सुनी कि वह विदेशी कंपनी डूब गई है। चंदा का पति बेकार हो गया है। उस समय हम सब अपनी-अपनी गृहस्थी में इतनी रच-बस गई थीं कि खबर सुनकर एक उसाँस भर ली। बस, वैसे यह कोई गंभीर बात थी भी नहीं।

एक नौकरी छूटती है तो आदमी दूसरी ढूँढ़ लेता है या कोई धंधा कर लेता है। चंदा के पति ने भी कुछ-न-कुछ जुगाड़ कर ही लिया होगा।

प्रथम प्रसव के समय अम्मा के पास आना जरूरी हो गया था। घर में कोई देखने वाला था नहीं। और डॉक्टरों ने भी काफी डरा दिया था। आने के बाद मालूम हुआ कि चंदा भी इन दिनों आई हुई है। जानकर बेहद खुशी हुई। उससे मिले दो-तीन साल हो चले थे। मेरी जाने लायक स्थिति नहीं थी, पर अम्मा का संदेश मिलते ही वह आ पहुँची। उसे देखा तो मेरी सारी खुशी काफूर हो गई। वह बुझा-बुझा-सा चेहरा और सूखी-सी हँसी। यह चंदा तो पहचानी ही नहीं जा रही थी।

मुझे देखते ही उसका चेहरा खिल उठा। जी भरकर भेंट लेने के बाद मैंने उसे अपने पास बिठाते हुए चुहल की, ''तू ऐसी सूखकर काँटा क्यों हो रही है ? हमारे जीजा जी कुछ खिलाते-पिलाते नहीं क्या ?''

''तुम्हारे जीजा जी को मूँछों पर ताव देने से फुर्सत मिले तब तो मेरी ओर देखेंगे।''

मैंने तो मजाक में एक बात कही थी, पर उसने जो उत्तर दिया वह मजाक नहीं था। वह एक कड़वी सच्चाई थी, क्योंकि उसका चेहरा एक असह्य रोष से भर उठा था।

''बात क्या है चंदा ? तुम खुश नहीं लग रही। घर में सब ठीक तो है न ?

''जिसका पति निठल्ला हो, उसके लिए कहीं भी कुछ ठीक नहीं होता शालू। यही घर था जहाँ सब लोग मुझे हाथोहाथ लेते थे। आज मेरी स्थिति नौकरानी से भी बदतर हो गई है। इनकी नौकरी जाते ही सबके चेहरे बदल गए हैं।''

''एक नौकरी चली गई तो क्या हुआ ? करने वाले के लिए काम की कमी थोड़े ही है। वे चाहें तो सौ नौकरियाँ जुटा सकते हैं। पर उन्हें तो वैसी नौकरी ही चाहिए। जरा भी उन्नीस-बीस नहीं चलेगा। ऐसी नौकरी कहाँ मिलेगी ? वह तो बिल्ली के भाग से छींका टूट गया था, समझी। मेरे पापा भी उसी चकाचौंध में मारे गए। नहीं तो क्वालीफिकेशन के नाम पर सिर्फ बी. कॉम. की एक डिग्री है। उसी के लायक काम मिलता है। वह इन्हें करना नहीं है।'' चंदा की कहानी सुनकर मन उदास हो गया। लगा कि उसके सुख को हम ईर्ष्यालु सखियों की नजर तो नहीं लग गई ?

कालांतर में दो दुर्घटनाएँ और घटी। चंदा के यहाँ दूसरा बेटा पैदा हुआ और हताशा में डूबे उसके पति ने पीना शुरू कर दिया। दोनों ही बातों ने चंदा को जैसे तोड़कर रख दिया।

छोटे भाई की शादी में जब घर आना हुआ तो चंदा से फिर मुलाकात हो गई। फीकी हँसी हँसकर बोली, ''अब तो हमेशा मुलाकात हुआ करेगी। मैं हमेशा के लिए यहाँ आ गई हूँ।''

''क्या बात करती हो ?''

''बर्दाश्त की भी एक हद होती है शालू। और वह मैं पार कर चुकी हूँ। मैंने श्रीमान जी से कहा कि जब तक आपके मनलायक काम नहीं मिल जाता, नौकरी करने दीजिए। मैं अपने बच्चों को दूसरों के टुकड़ों पर नहीं पाल सकती। आखिर मेरा पढ़ा-लिखा कब काम आएगा। बस, मेरा इतना कहना था कि घर में जैसे तूफान आ गया। घर की इज्जत उछालने के लिए मेरी बहुत लानत-मलामत की गई। लेकिन मैंने भी अब ठान लिया है। तबीयत का बहाना बनाकर आ गई हूँ। अब यहीं कुछ करूँगी।''

''चंदा'', मैंने गंभीर स्वर में कहा, ''पीहर का रहना चार दिन के लिए अच्छा होता है। हमेशा के लिए रहना चाहोगी तो मुसीबत होगी। यहाँ भी अपमान के घूँट पीने पड़ेंगे।''

''मैं समझती हूँ शालू। इसलिए नौकरी लगते ही अलग कमरा ले लूँगी। पर यहाँ रहने से मुझ पर भी बाप का साया तो रहेगा। भैया का सहारा तो मिलेगा। छोटे-छोटे बच्चों को लेकर मैं किसी तीसरी जगह कैसे रहूँगी।''

उसने जैसा कहा था, करके दिखाया। नौकरी लगते ही तो संभव नहीं हो सका, पर छह महीने में उसने अपने लिए वन रूम व किचन का जुगाड़ कर लिया। सुबह काम पर जाते हुए बच्चों को माँ के पास छोड़ जाती। शाम को उन्हें लेते हुए डेरे पर लौट आती। कई बार माँ उसके पास आकर रह जाती। बच्चों को स्कूल जाने के लिए ले जाने का काम भी नानी ही के जिम्मे था। अस्तित्व के इस संघर्ष में माँ साए की तरह चंदा के साथ रही। न उन्होंने बिरादरी की आलोचना की परवाह की, न समधियाने की धमकियों की। हाँ, चंदा के इस अप्रत्याशित निर्णय से उसकी ससुराल में खलबली मच गई थी। जो कदम चंदा जैसी स्वाभिमानी लड़की के लिए सहज स्वाभाविक था, वही उन्हें बहुत नागवार गुजरा था। एक दिन उसके जेठ और ससुर उसके दरवाजे आकर कहनी-अनकहनी सब कह गए थे और इस रिश्ते को एक तरह से समाप्त कर गए थे।

उसके बाद मैं जब भी अम्मा के यहाँ जाती, चंदा से भेंट हो ही जाती। उसका आत्मविश्वास लौट आया था। वह फिर से पहले जैसी हँसोड़ हो गई थी। जिंदगी का वह दु:खद अध्याय उसने अपने मन की किताब से फाड़कर फेंक दिया था। बच्चे भी बहुत प्यारे थे और जहीन थे। उन्हें देखती तो मन कैसा तो हो आता। क्या इन्हें पिता का अभाव न खलता होगा ? इस अनिवार्य सुख से बेचारे वंचित क्यों रह गए ?

पिछली बार मैं भतीजे के मुंडन पर आई थी तो अम्मा ने बताया कि चंदा का घरवाला आजकल यहीं आया हुआ है।

''अरे, ये सूखी नदी में बाढ़ कैसे आ गई।'' किसी एक्सीडेंट में हाथ-पैर तुड़वाकर बैठा है। ऐसे में तो बीवी ही याद आती है।'' सुनकर कितनी कोफ्त हुई। इतने सालों से कभी कोई खोज-खबर नहीं ली। कभी यह भी नहीं पूछा कि क्या खा रही हो, बच्चों को क्या खिला रही हो। सेवा के लिए एकदम बीबी याद आ गई। बेशर्मी की भी हद होती है।

जाने का बिलकुल मन नहीं था, पर अम्मा ने ठेल-ठालकर भेज दिया। अम्मा को लोकापवाद की बड़ी चिंता रहती है। जब भी आती हूँ, पाँच-दस घर मुझे ऐसे ही घुमा देती है।

मैं समय से ही पहुँच गई थी, पर चंदा तब तक लौटी न थी। दरवाजे में पैर रखते ही उसके पति से सामना हो गया। वही

तो घर का एकमात्र कमरा था। वहीं उसका बिस्तर लगा हुआ था। वह सजीला, सुदर्शन नौजवान वक्त की मार खाकर कंकाल भर रह गया था। चेहरे पर बेचारगी और काइयाँपन का अजीब-सा मिश्रण था। नमस्ते के जवाब में उसने भीतर से किसी को आवाज दी और करवट बदलकर लेट गया।

भीतर से जो निकली, वे शायद चंदा की सास थीं, क्योंकि जब मैंने अपना परिचय दिया तो बोली, ''तुम्हारी सहेली को तो घड़ी भर उसके पास बैठने की फुर्सत नहीं है, पर मैंने तो नौ महीने इसे पेट में रखा है। मैं इसे लावारिस कैसे छोड़ दूँ। तभी तो इनके दरवाजे पड़ी हूँ।''

अच्छा हुआ, उसी समय चंदा आ गई, नहीं तो मेरा तो वहाँ से भागने का मन हो रहा था। चंदा बेहद थकी और निढाल-सी लग रही थी। मेरे पास बैठते हुए बोली, ''लौटते हुए सब्जी मार्केट उतर जाती हूँ, वहाँ से फिर पैदल ही आना पड़ता है। पस्त हो जाती हूँ।''

वह पस्त हो गई थी, यह तो नजर ही आ रहा था पर मुझे यह भी लगा कि इस बार वह मुझे देखकर खुश नहीं हुई। मेरा भी उस माहौल में दम घुट रहा था। दो-चार औपचारिक बातें करके मैं उठ खड़ी हुई। उसने मुझे रुकने के लिए भी नहीं कहा। दरवाजे तक वह मुझे छोड़ने आई तो मैंने पूछ लिया, ''ये लोग क्या अब यहीं रहेंगे ?''

उत्तर में उसने कहा, ''शालू, मैं बड़ी खुश थी कि उस नरक से निकल आई हूँ। पर भाग्य तो देखो नरक मेरा पीछा करता हुआ यहाँ तक चला आया है।''

उसकी इस स्पष्टोक्ति पर मैं संकोच से भर उठी। फिर भी मैंने पूछा, ''इतनी-सी जगह में तुम लोग कैसे एडजस्ट करते हो ? मेरा मतलब है तुम्हारी सास भी.....''

''उन्हें मैं ही चिरौरी कर ले आई हूँ। तभी तो दिन-रात एहसान जताती हैं। पर तुम्हीं बताओ, मैं नौकरी करूँ कि इन्हें देखूँ ? कोई दो-चार दिन की बात तो है नहीं। अब जिंदगी भर भुगतना है।''

''मतलब''

''कमर के नीचे का पूरा भाग बेकार हो गया है। अब वे कभी अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकेंगे।''

सुनकर सन्न रह गई मैं। भगवान जैसे इस खुद्दार लड़की की परीक्षा लेने पर ही उतारू था। मैंने पूछा, ''एक्सीडेंट हुआ कैसे ?''

''नशे में धुत होकर गाड़ी चला रहे थे। भिड़ गए। पहले तो वहीं इलाज होता रहा, पर जब पता चला कि जिंदगी भर के लिए अपाहिज हो गए हैं तो भाई लोग आकर यहाँ डाल गए। तब से कोई झाँकने नहीं आया, न किसी ने पाँच पैसे ही भेजे हैं। मैं बच्चों के मुँह का कौर छीनकर माँ-बेटे को पाल रही हूँ। दवाइयों का खर्च है, सो अलग।''

उस भले मानस की मृत्यु की खबर सुनते ही पिछला सारा इतिहास मेरी आँखों के सामने तैर गया। एक बार फिर मुँह से यही निकला, ''चलो अच्छा हुआ, पाप कटा। जिंदगी भर इस बोझ को ढोना क्या उसके बस का था ? तीन साल में ही छक्के छूट गए होंगे।''

दूसरे दिन सारे काम रोककर मैंने चंदा के घर का रुख किया। अकेले जाने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। मातमपुरसी में जाते वैसे ही दिल काँपता है। यहाँ तो मामला और भी पेचीदा था। भीतर से दु:ख का जरा भी अहसास नहीं हो रहा था, पर दिखावा करते भी डर लग रहा था। चंदा तो मेरा झूठ फौरन पकड़ लेगी।

अपनी हड़बड़ी में समय का मुझे ध्यान ही नहीं रहा। यह तो वहाँ जाकर पता लगा कि मैं जरा जल्दी पहुँच गई हूँ, चंदा अभी स्कूल से लौटी नहीं है। दरवाजा उसकी सास ने खोला था। मन तो हुआ कि उलटे पैरों लौट जाऊँ, पर मुझे देखते ही उन्होंने पंचम में रोना प्रारंभ कर दिया। उनके पुत्र-शोक का अपमान करके निकल जाना मुझे अशोभन लगा।

उनकी रुलाई का आवेश थोड़ा-सा कम होते ही मैंने पूछ लिया, ''चंदा कब तक लौटती है ?''

उनका रोना एकदम थम गया। बोली, ''अब जब भी आ जाए। कोई टाइम-टेबल थोड़े ही है। सवा महीना घर में बैठ ली, यही बहुत है। एक बार औरत का पैर घर से बाहर निकल जाए तो फिर चाट-सी पड़ जाती है।''

मुझे उस औरत से एकदम वितृष्णा हो गई। कहाँ तो अभी जार-जार रो रही थी और दूसरे ही क्षण ऐसी घिनौनी बातें। एक करारा-सा मुँहतोड़ जवाब देने की इच्छा हो रही थी, पर संस्कार आड़े आ गए। फिर भी मैंने इतना तो कह ही दिया, ''घर से बाहर निकलने का किसी को शौक नहीं होता, मजबूरियाँ होती हैं।''

''ऐसी कोई मजबूरी नहीं थी'', वे ताव खाकर बोलीं, ''जितना वह कमाती है, उतना तो हम अपने मुंशी को दे देते हैं। इसे ही जिद चढ़ी थी। मैके वाले भी ऐसे हैं कि बस ! समझाना तो दूर उल्टे शह देते रहे। नहीं तो क्या घर छोड़कर आने की उसमें हिम्मत थी। अब-चार बर्तन जहाँ होते हैं, खनकते ही हैं। इस कारण से कोई घर तो नहीं छोड़ देता। अपने दिन खराब चल रहे हों तो थोड़ा सब्र भी करना चाहिए। क्या बताऊँ बेटा, इसी गम में उसके ससुर चले गए। इसी दुख में बेटे ने शराब की लत पाल ली.....।'' कहते-कहते वे फिर सुबकने लगी।

मन हुआ कह दूँ कि अपमान सहने की शक्ति सब में एक-सी नहीं होती। पर मैं किसी नए विवाद को शुरू करना नहीं चाहती थी। विषय बदलने के लिए मैंने कहा, ''आप रुक गईं, यह अच्छा हुआ। नहीं तो ये लोग एकदम अकेले पड़ जाते।''

''अरे यहाँ किसी को मेरी जरूरत नहीं है, जिसके लिए आई थी, वह तो चला गया। अब मेरे लिए यहाँ क्या रखा है। पर जो चला गया उसके नाम से साल भर मंदिर में दीया जलाना है। यहाँ तो किसी को फुर्सत नहीं है। बच्चे भी ऐसे निर्मोही हैं कि बस। मरे को क्या याद करेंगे !''

और क्यों करेंगे, मैंने सोचा। बाप ने उनके लिए क्या किया है ? उनके जीवन में सिर्फ अभाव और अपमान ही तो बोया है। अपनी याददाश्त में उन्होंने बाप को सिर्फ खाट पर पसरे ही देखा है। उसकी तुलना में, अस्तित्व के लिए जूझती माँ उन्हें ज्यादा अपनी लगी हो तो आश्चर्य क्या है ? बच्चे फैसला करने में बड़े माहिर होते हैं।

पर ये सारी बातें उस जटिल औरत की समझ से परे थीं। वे केवल अपने ही दुख को बड़ा करके देख रही थीं, सबकी सहानुभूति बटोरना चाह रही थीं। मुझे तो उनकी बातें सुन-सुनकर उबकाई आने लगी थी।

चंदा आई। मुझे देखकर उसके चेहरे पर कई रंग आए और गए। फिर वह कुछ बोली नहीं। चुपचाप मेरे पास आकर बैठ गई। मैंने उसका हाथ अपनी हथेलियों में ले लिया और देर तक हम दोनों निःशब्द बैठी रहीं। वह संवेदनाभरा स्पर्श ही एक-दूसरे को समझने के लिए काफी था।

''बच्चे नजर नहीं आए ?'' बड़ी देर बाद मैंने पूछा, ''ट्यूशन पढ़ने गए हैं।'' घर में तो पढ़ाई हो नहीं पाती। ट्यूशन भी अपने बस की कहाँ थी। वह तो भैया के एक दोस्त हैं। उनकी क्लास चलती है। उसी में दोनों को बिठा लेते हैं।''

फिर हम दोनों शिक्षा के घटते स्तर और बढ़ते बोझ पर चर्चा करने लगीं। उसकी सास ठोड़ी पर हाथ दिए कुछ देर तक हमारी बातें सुनती रहीं, पर उनके मतलब की कोई बात न हुई तो उठकर भीतर चली गईं।

उनके भीतर जाते ही मैंने कहा, ''ये देवी जी गई नहीं ?''

''कोई लिवा ले जाए तब न जाएँगी। अभी सब लोग आए थे, पर किसी ने चलने के लिए नहीं कहा। इस मुसीबत को कौन गले लगाएगा। तीन साल में उन लोगों को आजादी की आदत पड़ गई है।''

''मतलब, इनसे मुक्ति नहीं है ?''

''मुझे तो आदत हो गई है। उन पर दया भी आती है। इस उम्र में उन्हें यह दु:ख भोगना पड़ा है। यहाँ रहेंगी तो मेरे बच्चों के सर पर भी साया रहेगा। उस घर से थोड़ा जुड़ाव बना रहेगा।'' चंदा कुछ रुक कर बोली, ''लेकिन ढंग से रहती भी तो नहीं। दिन-रात बच्चों के मन में जहर बोती रहती हैं। मेरा पहनना ओढ़ना उन्हें पहले भी नागवार गुजरता था। मैं रोटी की तलाश में बाहर भटकती थी और वे अपने बेटे के कान भरती थीं। उसे रात-दिन कोंचती थीं। ''चाय पिओगी ?'' प्रस्ताव इतना आकस्मिक था कि मैं कुछ उत्तर ही न दे पाई।

उसने मेरे उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की और उठकर चाय बनाने चल दी। मैं भी साथ-साथ ही चल पड़ी थी, पर दरवाजे में ही ठिठक गई, क्योंकि उसकी सास कह रही थीं, ''तेरी यह सहेली यहाँ चाय पीने आई है या स्यापा करने ?''

मैं संकोच से भर उठी। मन हुआ, उलटे पैरों लौट जाऊँ; पर फिर मुझमें और चंदा की सास में फर्क क्या रह जाता। किंकर्तव्यविमूढ़-सी वहीं चौखट के परे खड़ी रह गई। चंदा ने इत्मीनान से गैस जलाकर चाय का पानी चढ़ाया और सास से बोली, ''चाय मैं अपने लिए बना रही हूँ।'' दिन भर मगजमारी करके आई हूँ। एक कप चाय का मेरा हक बनता है। शालू बैठी थी, इसलिए उससे पूछ लिया। आप पीना चाहें तो आपके लिए भी बन जाएगी।''

उत्तर में उन्होंने एकदम सुबकना प्रारंभ कर दिया, ''अरी करमजली, कभी तो उस अभागे के लिए दो आँसू ढलका लिया कर। बेचारे की आत्मा कलपती होगी।''

वे एकदम फट पड़ीं, ''ऐसे लच्छन हैं, तभी तो भरी जवानी में सुहाग उजड़ गया। भगवान सब देखते हैं।''

चाय के कप लेकर चंदा बैठक में आ गई थी। सास की बात सुनकर उसने पीछे पलटकर, ''कुछ तो तुम्हारे कर्मों का भी दोष होगा अम्मा ! नहीं तो बुढ़ापे में तुम्हें ये दु:ख क्यों झेलना पड़ता। रही मेरे सुहाग उजड़ने की बात, तो मैं सुहागवती थी ही कब ? मेरा गठजोड़ तो दुर्भाग्य के साथ हुआ था। वह तो अब भी मेरे साथ है। फिर मातम किसका मनाऊँ !''

उसकी इस बात का बुढ़िया से कोई जवाब देते न बना। और देती भी क्या ? वह महज एक बात नहीं थी। चंदा के दांपत्य का पूरा इतिहास था।

(पिया पीर न जानी)

शब्दार्थ-टिप्पणी

आदान-प्रदान लेन-देन **काफूर** उड़ जाना **निठल्ला** बेकार **हताश** निराश **बर्दाशत** सहन करना **जहीन** समझदार **वंचित** रहित **वितृष्णा** घृणा **जार-जार** फूट-फूटकर **स्यापा** विलाप, मरने पर विलाप करना **किंकर्तव्यविमूढ़** कुछ न सूझना **मातम** शोक **मातम पुरसी** शोक प्रकट करना **नागवार** बुरा लगना

मुहावरे

ठान लेना निश्चय करना **ताव खाकर** क्रोधित होकर **गले लगाना** स्नेह करना

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) चन्दा को देखकर सखियों को ऐसा क्यों लगा कि वह स्वाँग कर रही है ?

(2) परिवार में चंदा के प्रति लोगों का व्यवहार क्यों बदल गया ?

(3) विवाह के पश्चात् सखियाँ चंदा को ईर्ष्यालु नजर से क्यों देखती थीं ?

(4) पति ने चंदा को नौकरी करने से मना क्यों कर दिया ?

(5) अग्नि-पथ कहानी में चंदा का पति अन्य नौकरी क्यों न कर सका ?

(6) चंदा अपनी सास को क्यों बुला लाई थी ?

(7) चंदा ससुराल को नरक क्यों मानती है ?

(8) चंदा के पति अपाहिज कैसे हुए ?

(9) चंदा के पति के मृत्यु का समाचार सुन शालू दुःखी क्यों नहीं होती ?

2. उत्तर लिखिए :

(1) चंदा एक कर्तव्यनिष्ठ, स्वाभिमानी महिला है - स्पष्ट कीजिए

(2) अस्तित्व के संघर्ष के लिए चंदा ने किन-किन समस्याओं का सामना किया ?

(3) चंदा की सास चंदा के प्रति संवेदनहीन क्यों है ?

(4) चंदा के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

(5) 'आधुनिक, स्वाभिमानी, कर्तव्यनिष्ठ होते हुए भी चंदा ने भारतीय संस्कृति को जीवित रखा'- स्पष्ट कीजिए।

3. संसदर्भ व्याख्या कीजिए :

(1) ''भगवान जैसे इस खुद्दार लड़की की परीक्षा लेने पर ही उतारू था।''

(2) ''मैं बड़ी ही खुश थी कि उस नरक से निकल आयी हूँ। पर भाग्य तो देखो नरक मेरा पीछा करते हुए यहाँ तक चला आया।''

4. मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

(1) ठान लेना

(2) ताव खाकर

योग्यता-विस्तार

- स्वाभिमानी, कर्तव्यनिष्ठ स्त्रियों पर आधारित कहानियाँ ढूँढ़कर पढ़िए।
- 'वर्तमान समय में नारी पुरुष के समकक्ष है' - अपने विचार स्पष्ट कीजिए।

•

12 योग्यता और व्यवसाय का चुनाव

माधव राव सप्रे

(जन्म : सन् 1871 ई. ; निधन : सन् 1926 ई.)

सप्रेजी का जन्म मध्यप्रदेश के दमोह जिले के पथरिया गाँव में हुआ था। इनकी शिक्षा क्रमश: विलासपर और जबलपुर में हुई। सन् 1900 में इन्होंने 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक पत्र शुरू किया। सन् 1909 में नागपुर से 'हिन्दी ग्रंथ माला' का प्रकाशन आरंभ किया। इसके बाद बालगंगाधर तिलक के 'केसरी' पत्र से प्रेरित होकर 'हिन्दी केसरी' पत्र का प्रकाशन किया।

सप्रेजी मराठी भाषी थे अत: उन्होंने कई मराठी ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के मराठी ग्रंथ 'गीता रहस्य' का हिन्दी में अनुवाद किया। इस दौरान उन्होंने समाज, शिक्षा और राजनीति से संबंधित अनेक निबंध लिखे। इनके हिन्दी प्रेम से प्रभावित होकर इन्हें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पंद्रहवें देहरादून अधिवेशन में सभापति मनोनीत किया गया। मध्यप्रदेश के कई लेखकों को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया।

'योग्यता और व्यवसाय का चुनाव' युवा पीढ़ी को केन्द्र में रखकर लिखा गया एक विचार प्रधान निबंध है। विवेक और विचारपूर्वक व्यवसाय चुनने में ही जीवन की सफलता है। जिस व्यवसाय का हम चयन करें वह हमारे मन, इच्छा, कार्यक्षमता और प्रकृति के अनुरूप होना जरूरी है। इसके लिए व्यवसाय संबंधी जानकारी, अनुभव और कुशलता अर्जित करना भी आवश्यक होता है। नई पीढ़ी में बाबू - साहिबी की बीमारी बढ़ती जा रही है, शारीरिक श्रम करने में लोगों को शर्म आती है। लेखक के विचार से कोई व्यवसाय छोटा नहीं होता, यदि दृढ़ता एवं लगन के साथ व्यक्ति अपना काम करता रहे तो सफलता उसे अवश्य प्राप्त होती है।

प्रत्येक मनुष्य के लिए किसी न किसी व्यवसाय, रोजगार-धन्धे अथवा पेशे की आवश्यकता है और अपने लिए बुद्धिमत्तापूर्वक व्यवसाय चुनने में ही मनुष्य जीवन का सफल होना अवलम्बित है। ऐसे बहुत ही थोड़े-हजारों में एक मनुष्य होंगे जिन्हें जीवन-निर्वाह के लिए कुछ उद्योग नहीं करना पड़ता। अर्थात् जिनके पास आवश्यकता से बहुत ही अधिक सम्पति होती है। परन्तु ऐसे मनुष्यों को अपने लिए कुछ न कुछ कार्य चुनने की आवश्यकता पड़ती है। इसका कारण यह है कि ऐसे मनुष्यों को उदर-पूर्ति के लिए भले ही कष्ट न उठाना पड़े, परन्तु अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए तथा उसे आलस्य से बचाने के लिए, इच्छा न होने पर भी कुछ काम करना ही पड़ता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य-जीवन काम करने के लिए ही बनाया गया है और धनवान तथा धनहीन कोई भी मनुष्य इससे बच नहीं सकता।

यद्यपि इस बात की सत्यता निर्विवाद सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ व्यवसाय या कार्य करना ही पड़ेगा, तथापि बहुत-से युवकों को इस बात में डर और घृणा होती है। वे अपने माता-पिता का पिण्ड नहीं छोड़ना चाहते और रोटी के प्रश्न को स्वयं हल करना बेइज्जती समझते हैं। परन्तु उन्हें भी कभी न कभी, जल्दी अथवा देरी से, कुछ कार्यारम्भ करना ही पड़ता है। इसलिए प्रत्येक युवक का, जो संसार में प्रवेश करके विजय कामना रखता हो, यह कर्तव्य है कि वह शीघ्र ही इस बात का निश्चय कर ले, कि वह अपनी सारी शक्तियों को किस काम में लगायेगा। अनिश्चित अवस्था में रहकर विलम्ब करने और व्यर्थ समय खोने से कुछ लाभ न होगा।

बहुत-से मनुष्य सुख का अर्थ नहीं समझते। वे कार्य के अभाव अर्थात् आलस्य के साथ समय बिताने को सुख का साधन समझते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। कहा जाता है कि उद्योग-रहित और कार्यहीन मनुष्यों का मन शैतान का निवास-स्थान होता है। भारतवर्ष के एक बड़े अधिकारी को यह आज्ञा मिली कि ''अब तुम्हारे नौकरी के दिन पूरे हो गये। तुमने ईमानदारी से काम किया, इसके उपलक्ष्य में तुम्हें पेंशन मिला करेगी।'' जब उसे यह आज्ञा मिली तब वह बहुत ही खुश हुआ। खुशी इस बात की थी कि उसे अब काम नहीं करना पड़ेगा और मजे में दिन काटने का अवसर मिला करेगा। उसने खुशी के आवेश में अपने एक

मित्र को यह पत्र लिख भेजा, ''अब मैंने दिन-भर के झंझटों से छुट्टी पायी। दिन-रात काम करने से जी ऊब गया था। अब मुझे दस गुनी तनख्वाह मिले तो भी मैं काम नहीं करूँगा।'' दो-चार-आठ दिन बीत जाने पर जब वह बैठे-बैठे तंग आने लगा और जब उसने देखा कि काम किए बिना आलस्यपूर्ण जीवन बड़ा ही दु:खदायी होता है, तब उसने फिर अपने उस मित्र को शोक के साथ लिखा, ''भाई ! मैं समझता था कि काम न करने ही में आनन्द है, परन्तु बिल्कुल उलटी है। अब मुझे साफ़-साफ़ मालूम हो रहा है कि मेरा पूर्व जीवन बहुत ही उत्तम और सुखपूर्ण था। जितना ही अधिक काम करना पड़ता था, उतना ही अधिक सुख मिलता था।'' सारांश यह है कि हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना मनुष्य के देह-धर्म के विरुद्ध है। मनुष्य का मन पनचक्की के समान है। जब उसमें गेहूँ डालते जाओगे तब वह गेहूँ को पीसकर आटा बना देगी। परन्तु जब उसमें गेहूँ न डालोगे तब वह स्वयं अपने-आपको पीसकर क्षीण बना डालेगी।

जब यह निर्विवाद सिद्ध है कि काम न करना अथवा आलस्यपूर्ण जीवन बिता देना देह-धर्म के विरुद्ध है, तब हमारा यही कर्तव्य है कि हम कुछ न कुछ अच्छा व्यवसाय अपने लिए पसन्द करें। यह व्यवसाय हमारे मन, इच्छा, कार्यशक्ति और स्वभाव के अनुकूल होना चाहिए। स्वाभाविक प्रकृति के प्रतिकूल व्यवसाय करने में सफलता कभी हो नहीं सकती। मनुष्य-जीवन के असफल होने के दो मुख्य कारण हैं — पहला यह कि वह कभी-कभी अपनी स्वाभाविक कार्य-शक्ति के विरुद्ध व्यवसाय में लग जाता है। दूसरा कारण यह है कि मनुष्य व्यवसाय-कुशल हुए बिना ही अपने कार्यों को शुरू कर देता है, परन्तु जब तक कार्यकुशलता और कामचलाऊ अनुभव न हो जाये तब तक सहसा कोई काम शुरू न करना चाहिए। यह सच है कि अनुभव और कुशलता जल्द नहीं आती, परन्तु इन्हें दृष्टि के बाहर जाने नहीं देना चाहिए।

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवन-संग्राम में मनुष्य अमुक दो कारणों से अकृतकार्य होता है, परन्तु हमारे भारतवर्ष में एक और तीसरा कारण देखा जाता है। इस देश के पढ़े-लिखे शिक्षित लोग मानसिक और मौखिक कार्य करना अधिक पसन्द करते हैं। लोगों में शारीरिक व्यवसायों से एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो गयी है। ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। एक मनुष्य आठ रुपये माहवार पर म्युनिसिपल नाके का मुंशी बनकर कान में कलम दबा रखने में अपने जीवन की सार्थकता समझता है, परन्तु अन्य शारीरिक कार्य करके अधिक द्रव्य पैदा करने में उसे लज्जा मालूम होती है। भारतवर्ष में बाबू साहिबी की बीमारी दिनों-दिन बढ़ रही है और शोक के साथ कहना पड़ता है कि यदि किसी ने इस मर्ज की दवा शीघ्र न निकाली तो यह बीमारी असाध्य हो जायेगी। स्मरण रहे कि शारीरिक श्रम करने से और अपनी कर्मेन्द्रियों को किसी उपयोगी कार्य में लगा देने से ही शिक्षित समाज अपने देश के लिए आदर्श हो सकता है। विद्यार्थियों को उचित है कि वे इस बात पर ध्यान दें और शारीरिक श्रम से घृणा न करें।

जब हम अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार कोई व्यवसाय चुन लें तब फिर हमें उसमें हजारों बाधाओं के होने पर भी लगे रहना चाहिए। बहुधा युवावस्था में कुछ कष्ट, उदासीनता अथवा अकृतकार्यता होने से युवक-गण हताश होकर अपने इच्छित व्यवसाय को यह समझकर छोड़ देते हैं कि कदाचित् वे किसी दूसरे व्यवसाय में लग जाने से अधिक सफलीभूत होंगे, परन्तु यह बड़ी भारी भूल है। हमें सर्वदा यही उचित है कि हम जिस धन्धे को अपने लिए एक बार चुने लें, फिर उसे कभी न छोड़ें, उसी में दृढ़तापूर्वक लगे रहें। जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए अपनी प्रवृत्तियों के अनुकूल व्यवसाय चुनने की जितनी जरूरत है उससे बढ़कर उसमें दृढ़तापूर्वक लगे रहने की भी है। कठिनाइयों के उपस्थित होने पर यह विचार करना मूर्खता है कि हम किसी दूसरे व्यवसाय में अधिक सफल हुए होते। जब अपने व्यवसाय को छोड़कर दूसरे धन्धों में लगने के लिए जी ललचाता है तब उस दूसरे धन्धे के केवल गुण और लाभ ही दृष्टिगत हुआ करते हैं, और अपने धन्धे के केवल दोष और हानि, पर ऐसा होना सम्भव नहीं है। हम जिस गुलाब को देखेंगे उसी में काँटे मिल सकते हैं। इसलिए अपने एक बार के दृढ़ निश्चित व्यवसाय को बिना समझे-बूझे कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

हमें किसी व्यवसाय के चुनने अथवा छोड़ने में चंचलता अथवा जल्दी नहीं करनी चाहिए। कभी-कभी जब मनुष्य अपने व्यवसाय में हजार प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं होता तब उसे व्यवसाय बदलकर दूसरा चुनने की आवश्यकता अवश्य होती है। परन्तु इससे यह भी सिद्ध होता है कि उसने व्यवसाय को चुनने में बड़ी गलती की। ऐसी गलतियाँ कई कारणों से बुरी संगति, अचानक घटना, माता-पिता की बुद्धिहीनता अथवा अधूरी शिक्षा के कारण बहुधा हुआ करती है। परन्तु युवावस्था में मन बहुत चंचल रहता है। किसी काम को खूब सोच-समझकर करना चाहिए। प्राय: ऐसा भी देखा जाता है कि अनेक युवक उस कार्य को करते हैं जिसमे वे कभी सफल नहीं हो सकते, और कुछ युवक भ्रमवश उस व्यवसाय को छोड़ बैठते हैं जिसमें थोड़े ही अधिक परिश्रम से वे सफलीभूत हो गये होते। ध्यान रखने की बात है कि जो व्यवसाय किसी भी दृष्टि से जितना ही अधिक अच्छा होगा, उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक समय और परिश्रम भी लगेगा। हाँ, जिस राह से हम जा रहे हैं उस राह में यदि सिंह मिल जाये तो हमारा यह सोचना बिल्कुल स्वाभाविक होगा कि उस रास्ते के सिवा संसार में अन्य किसी रास्ते में सिंह आ ही नहीं सकता, परन्तु बिना परिश्रम के कुछ भी नहीं मिल सकता। इसलिए बाधाओं का सामना करते हुए अपने एक बार के चुने हुए व्यवसाय में दृढ़तापूर्वक लगे रहना श्रेयस्कर है।

बहुत-से युवक अपने योग्यता की डींग हाँके बिना सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहा करते हैं कि यदि हम उस व्यवसाय में न होते तो बहुत ही यशस्वी होते। उनका ईश्वर के सामने यही रोना रहता है कि उसने हमें अपनी अपूर्व योग्यता को प्रकाशित करने का अवसर ही न दिया। अपने साथियों के समक्ष अपनी योग्यता के विषय में व्याख्यान देकर ऐसे युवक कहा करते हैं कि हमें अपनी योग्यता को बर्बाद करना पड़ रहा है, ग्रहदशा अच्छी नहीं है, साधन और संयोग प्रतिकूल हैं इत्यादि परन्तु यह युवकों की बड़ी भारी भूल है। इस तरह के प्रलापों के कारण दुनिया उन्हें आत्म-प्रंशसक समझकर उनका तिरस्कार करेगी, क्योंकि दुनिया की तो आज तक यही समझ है कि जिसमें थोड़ी-बहुत आश्चर्यजनक योग्यता विद्यमान है वह मनुष्य उसे किसी न किसी तरह से संसार को अवश्य ही दिखा देगा। इसलिए अपने व्यवसाय की तुच्छता की शिकायत करते रहने के बदले उसे उच्च और कुलीन बनाने के प्रयत्न में मनोयोगपूर्वक लगे रहने से अधिक लाभ और ख्याति की सम्भावना है। इस व्यवसाय को तुम अपने किसी पाप का प्रायश्चित मत समझो, केवल कर्तव्य समझकर उसके सम्पादन में दत्तचित्त हो जाओ और फिर सफलता दूर नहीं रहेगी।

शब्दार्थ-टिप्पणी

पिण्ड पीछा **प्रशन** प्रश्न **अकृतकार्य** बिना सम्पन्न किया हुआ कार्य **श्रेयस्कर** हितकारी

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) प्रत्येक युवक को क्या निश्चय करना चाहिए ?

(2) व्यवसाय की पसंदगी में क्या ध्यान रखना चाहिए ?

(3) व्यवसाय चयन के बाद क्या करना चाहिए ?

(4) व्यवसाय के चयन में असफल व्यक्ति को क्या करना चाहिए ?

(5) व्यवसाय में कैसे लगे रहना श्रेयस्कर है ? क्यों ?

(6) लोग अपनी योग्यता की डींगे कैसे हाँकते हैं ?

(7) तुम व्यवसाय में सफलता के लिए क्या-क्या करोगे ?

2. उत्तर लिखिए :

(1) मनुष्य-जीवन की असफलता के दो मुख्य कारण बताइए।

(2) भारत में बाबूसाहिबी और बीमारी दिनों-दिन बढ़ रही है - समझाइए।

(3) शारीरिक श्रम का जीवन में महत्त्व समझाइए।

(4) व्यवसाय चुनने में क्या ध्यान रखना चाहिए ?

3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

(1) 'कार्यहीन मनुष्य का मन शैतान का निवासस्थान होता है।'

(2) 'हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना मनुष्य के देह-धर्म के विरुद्ध है।'

योग्यता-विस्तार

- अपने भावी व्यवसाय - के बारे में पंद्रह पंक्तियाँ लिखिए।

•

13 कमलादेवी चट्टोपाध्याय

(संकलित)

प्रस्तुत गद्यांश कमलादेवी चट्टोपाध्याय की जीवनी से लिया गया है। इसमें भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ पुजारिन के रूप में प्रसिद्ध कमलादेवी के जीवन, चरित्र और व्यक्तित्व के हर पहलू को बड़ी सहजता से अंकित किया गया है। बचपन से ही पढ़ने-लिखने की अभिरुचि के साथ जीवन-पथ पर अग्रसर होने वाली कमलादेवी ने हस्तशिल्प, नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य करते हुए उसे जन-जीवन से जोड़ा। देश-प्रेम, जन-सेवा, रोजगारी एवं नारी-सशक्तीकरण के लिए समर्पण भाव से अमूल्य कार्य किया। गाँधीजी की दांडी यात्रा में महिला-मोरचे की अगुआई करते हुए कानून तोड़ने के अपराध में उन्हें जेल भी जाना पड़ा। भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने के लिए उन्हें अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से नवाजा गया। हस्तशिल्प के व्यापक विकास के लिए संपूर्णतः समर्पित कमलादेवी का निधन भी हस्तशिल्प की अखिल भारतीय प्रदर्शन के आयोजन की व्यस्तता के बीच तबियत बिगड़ने से हुआ। जीवनी में कमलादेवी की जीवन-यात्रा का सुंदर आलेखन किया है।

आज सारा विश्व, भारतीय हस्तशिल्प के विषय में जानता है। उससे प्यार करता है और उसका उपयोग करता है।

इसका श्रेय किसे जाता है?

इसका श्रेय जाता है कमलादेवी चट्टोपाध्याय को। उन्हें ''भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ पुजारिन'' कहा गया है जो पूर्णतः उचित है, क्योंकि आधुनिक भारत में वे एक जनश्रुति बन चुकी हैं। कमलादेवी ने समाज से विद्रोह किया। वे एक संघर्षशील योद्धा थीं और जीवन के अंतिम क्षणों तक सक्रिय रहीं। उन्हें ललित कलाओं, रंगमंच तथा संस्कृति से बचपन से ही लगाव रहा। कमलादेवी बहुत ही संवेदनशील महिला थीं। शायद इसी कारण उनके लिए ऋतुओं का त्योहार के साथ और त्योहारों का भारतीय जीवन के साथ सहज संयोजन महत्वपूर्ण था।

3 अप्रैल, 1903 को मंगलोर के एक सारस्वत परिवार में जन्मी कमलादेवी चट्टोपाध्याय ही शायद वह विलक्षण व्यक्तित्व है 'संजीवन व्यक्ति' की संज्ञा से अभिहित किए जाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। वे अपने पिता अनंतैया धारेश्वर तथा माता गिरजा बाई की चौथी संतान थीं। कमलादेवी के जन्म के समय उनकी बड़ी बहन ही जीवित थीं। दो भाइयों की उनके जन्म से पहले ही मृत्यु हो गई थी।

जिस परिवार में कमलादेवी पली-बढ़ी वह समृद्ध परिवार था। कमलादेवी के पिता अपने श्रम, शक्ति और प्रतिभा से जीवन में आगे बढ़े थे और कलेक्टर के पद से सेवानिवृत्त हुए थे।जो उन दिनों बहुत महत्वपूर्ण पद था। उनकी माता भी कर्नाटक के सबसे धनी जमींदारों के एक परिवार से थीं।

कमला के पिता अनंतैया कमला के आमोद-प्रमोद और नटखट-पन के प्रति सहिष्णु थे। बच्चों के साथ बरताव करने का उनका अपना अलग तरीका था और वे उनके साथ बच्चे बनकर बात कर लेते थे। वे कमलादेवी के विद्रोहात्मक कामों में आनंद लेते थे। अनंतैया ने कभी इस बात पर जोर नहीं दिया कि कमलादेवी प्रकृति का आनंद लेना छोड़कर किताबों से चिपकी रहें। कमला को अध्ययन करना अच्छा नहीं लगता था, लेकिन उसे पढ़ना पसंद था जो उसकी माँ ने उसे बहुत पहले सिखाया था।

कमलादेवी के जीवन पर जिस अन्य व्यक्ति का गहरा असर हुआ, वे थीं उनकी माँ गिरिजा बाई। उसी प्रभाव के कारण कमलादेवी अंधेरे से, भूतप्रेत से या लोगों की बातों से कभी नहीं डरती थीं। वे फालतू की गप्पबाजी से दूर रहते हुए अपना समय पढ़ने में बिताती थीं। रूढ़ियों की उपेक्षा करना उन्होंने अपनी मां से सीखा। जो चीजें औरों के लिए बहुत महत्व रखती थीं, उनके लिए उन चीजों का कोई महत्व नहीं था।

7 वर्ष की उम्र में स्कूल जाना शुरू करने से पहले ही कमलादेवी संगीत की शिक्षा लेने लगी थीं। स्कूली पढ़ाई के दौरान भी उनकी तेजस्विता में कोई कमी नहीं आई। वहाँ रंगमंच की ओर उनका रुझान हुआ। रंगमंच के प्रति इस रुझान ने आगे

चलकर उनके जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारतीय रंगमंच के विकास व उत्थान पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा।

छोटी उम्र में ही पढ़ना सीख लेने के कारण कमलादेवी में पढ़ने के प्रति गहरा लगाव पैदा हो गया। यह जाने बिना कि वे क्या पढ़ने जा रही हैं, उन्हें जो कुछ भी मिलता वे उसे पढ़ डालतीं। बड़ी होने पर उन्होंने यशस्वी व्यक्तियों की जीवनियाँ पढ़ीं। एनी बेसेंट की जीवनी '**एन ऑटोबायोग्राफी**' की उनके मन पर गहरी छाप पड़ी। एनी बेसेंट के प्रति कमलादेवी के मन में बहुत श्रद्धा थी। उन्हें पौराणिक कथाएँ, राजस्थान की वीरता की गाथाएँ, ऐतिहासिक कहानियाँ तथा महिलाओं से संबंधित कहानियाँ बहुत अच्छी लगती थीं।

कमलादेवी का स्कूल नदी के किनारे वनस्थली में सुंदर प्राकृतिक वातावरण में स्थित था। एक दिन झाड़ी में छिपे एक चोर ने कमलादेवी के गले की माला छीनने की कोशिश की। कमलादेवी ने चोर से डटकर मुकाबला किया और उसे भगा दिया।

सन् 1920 में कमलादेवी अपनी माँ और बहन के साथ चेन्नई गईं। इस यात्रा से उनका पूरा जीवन बदल गया। उनकी मुलाकात उदीयमान कवि एवं लेखक हरिन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय से हुई। वे हैदराबाद में बसे एक प्रतिभाशाली बंगाली परिवार से थे। चट्टोपाध्याय ने कमलादेवी को एक विशाल जनसभा में देखा और उसी दिन शाम को जिस मित्र के पास वे ठहरे थे, उससे बोले कि वे इसी लड़की से शादी करेंगे। कमलादेवी को शादी के बारे में फैसला करने में काफी समय लगा। वे उनकी पुस्तकों की प्रशंसक थीं, परंतु उन्हें लगता था कि यह व्यक्ति अस्थिर प्रकृति का है। अंततः वे शादी के लिए राजी हो गईं। शादी हो गई, परंतु गिरिजाबाई ने जोर दिया कि शादी के बाद भी कमलादेवी पढ़ाई जारी रखेंगी। वे अपनी बेटी को ज्ञान के माध्यम से स्वतंत्र बनाने के लिए कृत संकल्प थीं। परंतु हालात बदल गए। शादी के तीन महीने बाद हरिन्द्रनाथ इंग्लैंड चले गए और कमलादेवी मंगलौर लौट आईं।

युवा कमलादेवी के जीवन का यह दौर अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया, क्योंकि उसी दौरान उनकी मुलाकात अंग्रेज महिला मारगरेट कज़िन से हुई जो ग्रेटा के नाम से जानी जाती थीं। जिन्होंने भारतीय महिलाओं को उदार विचारों की शिक्षा देने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। कमलादेवी पर उनका बहुत गहरा असर पड़ा। उनके मन में समाज, विशेषकर महिलाओं की कुछ सेवा करने की लालसा अब साकार होने लगी थी। ग्रेटा ने उन्हें नारी मुक्ति और मानवता की सेवा का मार्ग दिखा दिया। कुछ समय बाद कमलादेवी ने हरिन्द्रनाथ के पास इंग्लैंड जाने का फैसला किया। हरिन्द्रनाथ और कमलादेवी दोनों को रंगमंच का शौक था। इंग्लैंड में रहते हुए उन्होंने तय कर लिया कि भारत लौटकर वे रंगमंच आंदोलन चलाएंगे। भारत लौटने पर 'रिटर्न्ड फ्रॉम एवरॉड' नामक हास्य नाटक में कमलादेवी ने नायिका की भूमिका निभाई।

धीरे-धीरे देशव्यापी रंगमंच आंदोलन खड़ा करने की उनकी योजना साकार होने लगी। हरिन्द्रनाथ नाटक लिखते तथा संगीत संयोजन करते और कमलादेवी दृश्य रचना तथा वेशभूषा आदि का काम संभालती। हरिन्द्रनाथ नायक की भूमिका निभाते तो कमलादेवी नायिका की। कमलादेवी ने कहा, ''हमारा विचार है कि नाटक और रंगमंच जीवन के महत्वपूर्ण सामाजिक पहलू हैं।'' उनके नाटक जाति-प्रथा, अस्पृश्यता जैसी सामाजिक समस्याओं पर आधारित होते थे।

सन् 1928-29 में कमलादेवी ने 'वसंत सेना' नामक फिल्म में छोटी-सी भूमिका की। परंतु उन्हें अधिक लगाव रंगमंच से ही था। उन्होंने मुंबई में इंडियन नेशनल थियेटर की स्थापना की। इसके बाद पेरिस में मुख्यालय बनाकर यूनेस्को द्वारा 'इंटर थिएटर इंस्टिट्यूट' स्थापित होने के बाद कमलादेवी ने भारतीय इकाई के रूप में भारतीय नाट्य संघ की स्थापना की।

भारतीयों को अपनी धरोहर की शिक्षा देने के लिए उन्होंने नाट्य शिल्प संग्रहालय की स्थापना की और सन् 1946 में दिल्ली में पहले लोक नाट्य महोत्सव का आयोजन किया।

कुछ महीने बाद टाइफाइड हो जाने पर जब उन्हें आराम करना पड़ा तो उन्होंने स्वयंसेवक के रूप में अपने अनुभव लिखे। गंभीर लेखन का यह उनका पहला प्रयास था जिसमें उन्हें काफी सुख मिला।

कमलादेवी सेवादल के कार्यों में काफी समय लगाने लगीं। वे केन्द्रीय प्रशिक्षण अकादमी में भरती हो गईं, जहाँ शारीरिक

अभ्यास कराया जाता था। वहाँ डंडा, भाला, लाठी, तलवार, छुरी आदि चलाने तथा सूर्यनमस्कार और अन्य योगासनों का अभ्यास कराया जाता था। किसी भी स्वयंसेवक को कोई वेतन आदि नहीं मिलता था। उन्हें केवल भोजन और वस्त्र दिए जाते थे।

सेवादल से कांग्रेस के झंडे को राष्ट्रीय प्रतिष्ठा मिली और ध्वजारोहण तथा ध्वजावतरण नियमित रूप से समारोहपूर्वक किया जाता था। इस मौके पर झंडावंदन के गीत भी इस समारोह का अभिन्न अंग बन गए।

सन् 1927 में नई शिक्षा नीतियों के बारे में सम्मेलन पुणे में करने का फैसला किया गया, क्योंकि उन दिनों वह महिला-शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। अधिकतर गतिविधियों का केन्द्र सेवा सदर था, जिसके नेताओं ने रोजमर्रा कामकाज संभाला हुआ था। कमलादेवी ने स्वयंसेवक के रूप में छोटे-मोटे काम संभालने की इच्छा प्रकट की और उन्होंने रेलवे स्टेशन पर रात को पहुँचने वाले प्रतिनिधियों की अगवानी की जिम्मेदारी संभाली। उन्होंने इस मौके के महत्व को समझा, क्योंकि इसी सम्मेलन में 'ऑल इंडिया विमेंस कांफ्रेंस' का जन्म हुआ। जिसने आगे चलकर करीब 30 वर्ष तक देश के राष्ट्रीय मामलों में, विशेषकर भारतीय महिलाओं की स्थिति बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कमलादेवी ने सचिव पद का काम बड़ी गंभीरता से संभाला। वे अपने कार्यालय का प्रबंध स्वयं संभालती थीं। असल में एक तरह से वे खुद ही कार्यालय थीं। उन्होंने शार्ट-हैंड और टाइपिंग सीख ली। वे डाकघर में पत्र डालने से लेकर दफ्तरी तक के सारे काम खुद किया करती थीं। उन्होंने कहा, ''मुझे खुशी है कि मैंने सभी काम स्वयं किए, क्योंकि इससे मैं आत्मनिर्भर बन सकी।''

विभिन्न सम्मेलनों में जाने के लिए उन्होंने रेलवे को मासिक आधार पर रियायती टिकट देने को राजी किया, जिससे एक यात्रा के टिकट पर दो यात्राओं की सुविधा मिल सके। इससे बच्चों और घर के बोझ से मुक्त होकर महिलाएँ अकेली ही लंबी यात्राएँ कर सकती थीं। निम्न आय वर्ग की महिलाओं के साथ सतत संपर्क रहने से ही कमलादेवी को ज्ञात हुआ कि वे किन हालात में रहती हैं। उन्होंने महिला श्रमिकों की समस्याओं में गहरी दिलचस्पी ली।

मदुरै में बड़ी कपड़ा मिलों के मालिकों ने नोटिस लगाकर मजदूरों से अपनी यूनियन भंग करने को कहा। कमलादेवी के भाषणों से सविनय अवज्ञा आंदोलन ज्यों-ज्यों जोर पकड़ता गया नमक शब्द बहुत महत्वपूर्ण होता गया। महात्मा गांधी ने नमक कानून तोड़ने के लिए 12 मार्च, 1930 को साबरमती आश्रम से गुजरात के समुद्र तट पर दांडी तक की करीब दो सौ मील की ऐतिहासिक यात्रा प्रारंभ की।

जब इस यात्रा की तैयारियाँ की जा रही थीं तो स्वयंसेवकों में महिलाओं को भी शामिल करने का निश्चय किया गया। कमलादेवी ने महात्मा गांधी से मिलकर कुछ स्त्रियों को यात्रा में शामिल होने की अनुमति देने का अनुरोध किया। कमलादेवी ने कहा, ''यदि स्त्रियों को यात्रा में शामिल होने का मौका दिया गया तो उनमें जिम्मेदारी और समर्पण की भावना आएगी।'' इसके फलस्वरूप कमलादेवी तथा अनर्तिकाबाई गोखले को कानून तोड़ने वालों के पहले जत्थे में सम्मिलित किया गया। जिसमें उन्होंने गर्वपूर्वक बैनर उठाया। मजिस्ट्रेट ने उन्हें छह महीने की साधारण कैद की सजा सुनाते हुए कहा कि कमलादेवी ने अन्य लोगों की अपेक्षा ज्यादा व्यक्तियों को कानून तोड़ने के लिए उकसाया है।

सन् 1930 में पूरे देश में असंतोष व्याप्त था। सत्याग्रह आंदोलन के साथ-साथ हिंसक घटनाएँ भी हो रही थीं। सन् 1931 में जेल से रिहा होने के बाद कमलादेवी को सेवकदल के स्वयंसेवकों का प्रभारी बना दिया गया। उन्हें महिलाओं को प्राथमिक चिकित्सा से अग्निशामक कार्य तथा लाठी, गोली झेलने आदि का प्रशिक्षण देना था।

अन्य कई पुस्तकें लिखने के साथ-साथ कमलादेवी ने अपने अनुभवों पर पुस्तक लिखी। इनमें '*अमेरिका दि लैंड ऑफ सुपरलेटिब्ज, अंकल सैम्स एम्पायर* और *टुवर्डस ए नेशनल थियेटर*' शामिल हैं। इसके अलावा उन्होंने सूरत में अब्रम में ऑल इंडिया वीमेंन्स कांफ्रेंस (अखिल भारतीय महिला सम्मेलन) के लिए शिविर का आयोजन किया। कमलादेवी सम्मेलन की अध्यक्ष चुनी गई। यह सन् 1942 का वर्ष था जब देश में महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ घटित हो रही थीं। कमलादेवी को दो

वर्ष की कैद हो गई। यह समय उन्होंने पढ़ने-लिखने में बिताया। सन् 1944 में जेल से बाहर आने पर उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया। बंगाल के अकाल के दौरान खोले गए बहुत से अनाथालय तथा आश्रमगृह उपेक्षित पड़े थे। अब कमलादेवी ने "बच्चों को बचाओ," नारे के साथ उनकी भलाई को अपना विशेष कार्य मानकर इन संस्थाओं की ओर ध्यान देना शुरू किया। बच्चों की देखभाल एवं शिक्षा के लिए कई नए संस्थान खोले। उन्होंने बच्चों की देखरेख तथा शिक्षा के कार्य में लगे युवाओं के प्रशिक्षण के लिए छात्रवृत्ति दिलाने की भी व्यवस्था की।

जब उन्होंने देखा कि मुंबई शहर से बाहर चिकित्सा का कोई अच्छा इंतजाम नहीं है तो उन्होंने चलते-फिरते चिकित्सालय शुरू करने का सुझाव दिया। उन्होंने कामकाजी लड़कियों के लिए हॉस्टल खोलने की दिशा में भी शुरुआत की। उन्होंने इस काम पर पूरा ध्यान दिया। न केवल बड़े शहरों में बल्कि जिले के कस्बों में भी लड़कियों के लिए हॉस्टल खोले गए। इस क्षेत्र में उनके योगदान को देखते हुए नई दिल्ली में ऑल इंडिया विमेंस कांफ्रेंस के हॉस्टल का नाम उनके नाम पर रखा गया।

सन् 1946 में कमलादेवी को कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्य चुने जाने का गौरव प्राप्त हुआ। परंतु उन्होंने असेंबली की सदस्य बनने से मना कर दिया। उनकी राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे राजनीति में स्वतंत्रता प्राप्ति के खास उद्देश्य से आई थीं और आजादी मिल जाने के बाद कोई भी उन्हें राजनीति में बने रहने के लिए राजी नहीं कर सका।

कमलादेवी को कई महत्वपूर्ण पदों की पेशकश की गई। उन्होंने पहले कैबिनेट मंत्री और बाद में मास्को व काहिरा में राजदूत पद के प्रस्ताव ठुकरा दिए।

कमलादेवी ने जिस एक और नई प्रणाली का शुभारंभ किया, वह थी संघटित ऋण प्रणाली, जिसकी अक्सर नकल की जाती रही है। किसानों को ऋण तथा विशेषज्ञों की सलाह उपलब्ध कराई गई। कमलादेवी ने जोर दिया कि कृषि उपज, दुग्ध उद्योग और मुर्गी-पालन के साथ-साथ फल, सब्जियाँ और फूल उत्पादन को बढ़ावा दिया जाए।

महिलाओं की ओर कमलादेवी विशेष ध्यान देती थीं। उन्होंने वस्त्र बनाने, खाद्य पदार्थ बनाने तथा मसाले तैयार करने, अचार, चटनी और कागज बनाने, कशीदाकारी करने तथा खिलौने बनाने जैसे विविध प्रकार के कार्यों के लिए महिलाओं की अनेक सहकारी समितियाँ गठित कीं। उन्होंने बुनकरों को संगठित किया, उन्हें ऋण तथा अन्य सुविधाएँ दिलवाई और हथकरघा सहकारी समितियाँ बनाईं।

सन् 1966 में उन्हें सामुदायिक नेतृत्त्व के लिए 'मेगसेसे' पुरस्कार प्रदान किया गया।

उन्होंने कॉटेज एंपोरियम का काम संभाला और यह दिल्ली की एक प्रतिष्ठित दुकान के रूप में प्रसिद्ध हो गया। कमलादेवी का मानना था कि हस्तशिल्प से देश की प्रगति में मदद मिली है। उन्होंने बालूचर व तंचोई की सुंदर बुनाई और कश्मीर के कीमती और भारी जामादार शालों की कला पुन:जीवित करने के भी प्रयास किए।

कठपुतली तथा कलमकारी चित्रकला के केन्द्र भी खोले गए। सन् 1962 में हस्तशिल्प बोर्ड की अध्यक्ष की हैसियत से कमलादेवी ने उत्तर-पूर्व सीमांत एजेंसी (अरुणाचल प्रदेश) और नागालैंड का दौरा किया। इन क्षेत्रों में जाने वाली वे पहली भारतीय महिला थीं। वे जनजातीय लोगों के लिए कुछ करना चाहती थीं।

इन सब प्रयासों से देश में शिल्प की अपार संपदा लोगों के सामने आई और हस्तशिल्प उद्योग देश में सबसे अधिक रोजगार देने वाला उद्योग बन गया, जिसमें 10 लाख से अधिक व्यक्तियों को काम मिला।

कमलादेवी का सबसे बड़ा योगदान था शिल्पकारों की प्रतिष्ठा बढ़ाना। उन्होंने महसूस किया कि वे कलाकार हैं। जब उन्हें संगीत-नाटक अकादमी की फेलोशिप मिली तो उन्होंने महसूस किया कि इसके लिए तो शिल्पकारों का शुक्रिया अदा किया जाना चाहिए।

इसके बाद कमलादेवी को लगातार पुरस्कार मिलने लगे। सन् 1962 में उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में सेवाओं के लिए होनोलूलू, हवाई में शुरू किया गया वाटुमल फाउंडेशन पुरस्कार प्रदान किया गया। तत्कालीन चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति ने उन्हें अंतरराष्ट्रीय सद्भाव बढ़ाने के लिए अपने देश का स्वर्ण पदक दिया। विश्वभारती विश्वविद्यालय ने उन्हें

देशिकोत्तम उपाधि से सम्मानित किया। वे इतनी विनम्र थीं कि सन् 1966 में मेगसेसे पुरस्कार मिलने की खबर पाकर बोलीं, ''जरूर कहीं कोई गलती हुई है। यह पुरस्कार तो महान विभूतियों को दिया जाता है।''

उन्होंने शिल्पकारों तथा उनके शिल्प के प्रति सेवा का अपना आदर्श इस कदर निभाया कि अपनी सारी अचल संपत्ति और मेगसेसे पुरस्कार से मिली राशि का बड़ा हिस्सा उन्होंने मंच शिल्प के लिए श्रीनिवास मल्लैया ट्रस्ट को दान कर दिया।

कमलादेवी ने भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण लाने में अग्रणी भूमिका निभाई। वे भारतीय शिल्प को ख्याति दिलाने की दिशा में जीवन भर अथक प्रयास करती रहीं। देश के कोने-कोने में गाँव-गाँव घूमकर उन्होंने शिल्पकारों से मुलाकात की, नए डिज़ाइन तथा नए विचार दिए और परंपरागत और आधुनिक प्रवृत्तियों में समन्वय करना सिखाया।

कमलादेवी का निधन 29 अक्टूबर, 1988 को ब्रीच कैन्डी अस्पताल में हुआ, जहाँ उन्हें हस्तशिल्पों की अखिल भारतीय प्रदर्शनी, शिल्पी उत्सव में अचानक तबीयत बिगड़ जाने पर दाखिल कराया गया था। उस समय वे 85 वर्ष की थीं।

शब्दार्थ-टिप्पणी

लालसा लालच, लोभ **रियायती** किफायती

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) कमलादेवी का जन्म कहाँ हुआ था ?

(2) अनंतैया का व्यवहार बच्चों के प्रति कैसा था ?

(3) कमलादेवी की मुलाकात किस अंग्रेज महिला से हुई ?

(4) कमलादेवी के नाटक किन समस्याओं पर आधारित थे ?

(5) कमलादेवी ने सेवादल में स्वयं सेवक के रूप में क्या जिम्मेदारी संभाली ?

(6) कमलादेवी को कौन से पुरस्कार मिले ?

2. उत्तर लिखिए :

(1) कमलादेवी को भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ पुजारिन क्यों कहा गया ?

(2) कमलादेवी पर किसका प्रभाव था ? कैसे ?

(3) कमलादेवी का जीवन कैसे बदल गया ?

(4) नमक कानून तोड़ने के लिए कमलादेवी ने क्या किया ?

(5) कमलादेवी ने लड़कियों के लिए क्या किया ?

(6) कमलादेवी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

योग्यता-विस्तार

- महान स्वतंत्रता सेनानी लक्ष्मी सहगल की जीवनी इंटरनेट के माध्यम से खोजकर पढ़िए और कक्षा में सुनाइए।

●

14 काला पहाड़

भगवानदास मोरवाल

(जन्म : सन् 1960 ई.)

भगवानदास मोरवाल का जन्म हरियाणा के एक पिछड़े एवं उपेक्षित क्षेत्र मेवात के एक छोटे-से कस्बे नगीना में एक श्रमिक परिवार में हुआ था। उन्होंने राजस्थान विश्व विद्यालय से एम. ए. तथा पत्रकारिता में डिप्लोमा किया था।

मोरवालजी ने उपन्यास और कहानियों के अलावा कविताएँ भी लिखीं। उनके उपन्यासों में 'बाबल तेरा देश में', 'रेत' तथा 'काला पहाड़' मुख्य हैं। अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार, सूर्यास्त से पहले, सिला हुआ आदमी-उनके कहानी संग्रह हैं। 'दोपहरी चुप है' कविता संग्रह है। उनकी रचनाओं में लोक जीवन का चित्रण हुआ है। उन्हें हिन्दी अकादमी, दिल्ली का 'साहित्यिक कृति पुरस्कार', डॉ. अंबेडकर फेलोशिप पुरस्कार, भारतीय दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। उन्हें अंतर्राष्ट्रीय इन्दुशर्मा कथा सम्मान लंदन में प्रदान किया गया। 'रंग अबीर' कहानी के लिए चेन्नई से राजाजी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

प्रस्तुत उपन्यास-अंश 'काला पहाड़' से लिया गया है। 'काला पहाड़' मेवात के धार्मिक-सांप्रदायिक सौहार्य की पृष्ठभूमि में लिखा गया उपन्यास है। यहाँ वर्षों से सभी जाति एवं संप्रदाय के लोग परस्पर मेल-जोल से रहते आए हैं। प्रस्तुत कथांश में काला पहाड़ की तलहाटी में बसे नगीना गाँव के लोगों के बीच होने वाली पतंगबाजी का रोमांचक वर्णन है। इस विशेष आयोजन में सारा गाँव पूरे तालमेल के साथ गर्मजोशी से शरीक होता है। सलेमी मुसलमान है लेकिन मँगतू के परिवार से उसका पुश्तैनी रिश्ता है। मँगतू को पतंग-स्पर्धा में जिताने के लिए वह जी-जान से सहायता करता है। लाला नौबतराय की हवेली और चंदू परधान की हवेली से दो समूहों के बीच रोमांचक पतंगबाजी होती है। अंततः जीत मँगतू के दल की होती है। पतंग लड़ाने में मँगतू की बराबर का कोई नहीं है। हार-जीत को सभी खेलदिली से लेते हैं। जीत की खुशी में सलेमी मँगतू को कंधे पर उठाकर सारे गाँव का चक्कर लगाता है, यह घटना गाँव के इतिहास में अविस्मरणीय बन जाती है।

एक-एक दृश्य सलेमी की स्मृति में ऐसे लिपटा हुआ है जैसे हुचके से पतंग की रील कि एक बार वह खुल जाए तो फिर देखो कैसे एक के बाद एक दृश्यों के पेच लड़ते चले जाते हैं, यानी आज भी सलेमी को एक-एक बात और दृश्य हू-ब-हू याद है।

वह कैसे भूल सकता है तीज पर कूड़ ऊपर जमा उस भीड़ को जिसकी आँखें पच्छिम की ओर दूर आकाश में गोता लगाती उस पतंग पर टिकी होती हैं, जिसकी डोर मँगतू की खून से सनी अँगुलियों के पोरों को ज़िबह करती हुई, पूरी गति के साथ दूसरी पतंग की डोर को रेत रही होती।

उस सिलौने को तो सलेमी मरते दम तक नहीं भूल सकता है जिस दिन मँगतू को अपने कंधों पर एक नायक की तरह उचककर छोरे-छापरों की भीड़ ने पूरे नगीना का चक्कर लगा दिया था, और जैसे ही भीड़ मँगतू के घर पहुँची कि दादा सुग्गन देखते ही मँगतू पर टूट पड़ा था। मँगतू की यह हालत देखकर भीड़ तो नौ दो ग्यारह हो गई और फँस गया बेचारा मँगतू।

मँगतू को फँसा देख सलेमी हिम्मत कर धीरे से दादा सुग्गन के पास आया। उसी दादा सुग्गन के पास जिसकी उम्र तो सलेमी के अपने बाप जितनी है लेकिन पता नहीं गाँव के किस नाते से और कब से, सुग्गन दादा सुग्गन और मँगतू उसके लिए काका मँगतू बना हुआ है। सलेमी ने समझाने के अंदाज़ में जैसे ही दादा सुग्गन से कुछ कहना चाहा कि तड़ातड़ उस पर पणहा पड़ने लगी। मँगतू तो मौक़ा देख कर बच निकला और मरम्मत हुई सलेमी की। लेकिन वाह रे सलेमी, चुपचाप हाथ बाँध कर वह दादा सुग्गन के आगे सिर झुका कर खड़ा हो गया, ''ले दादा, खूब मार ले... जब तेरो जी भर जाए, बता दीजो !''

सलेमी के इस वाक्य के बाद दादा सुग्गन का पणहा वाला हाथ हवा में जहाँ था वहीं रह गया और मँगतू को गरियाते हुए बोला, ''या सुसरा ने घर बरबाद कर राखो है... जब देखो बस रील-हुचकान में मँढो रहवे है... न घर की चिंता, न गिरस्ती की।'' कहते-कहते दादा सुग्गन पुरानी भीत की मानिंद भरभरा कर ढह गया।